तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का ८७वां पुष्प

☐ पुस्तक :

मुक्ति का अमर राही : जम्बूकुमार

☐ लेखक :

श्री राजेन्द्र मुनि

(शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न)

☐ सम्पादक :

प्रोफेसर लक्ष्मण भटनागर

☐ प्रथम प्रवेश :

विजयादशमी वि० स० २०३४, अक्टूबर १९७७

☐ प्रकाशक :

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

शास्त्री सर्कल, उदयपुर

☐ प्रेरिका :

महासती श्री प्रकाशवती जी म०

☐ मुद्रक :

श्रीचन्द सुराना के लिए

शैल प्रिन्टर्स, माईथान, आगरा

☐ मूल्य :

५ रुपये मात्र

समर्पण

प्रसिद्ध साहित्य-मनीषी श्रद्धेय गुरुदेव

श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री के

कर कमलो में

सादर समर्पण !

प्रकाशकीय

विज्ञपाठकों के कर कमलो मे 'मुक्ति का अमर राही जम्बू-कुमार' पुस्तक समर्पित करते हुए हमे अपार प्रसन्नता है।

आर्य जम्बूस्वामी जैन इतिहास के महत्वपूर्ण आचार्य हुए है जिनका जीवन अत्यन्त महान और पवित्र रहा है।

हमारी चिरकाल से यह अभिलाषा थी कि ऐसे महापुरुष के सम्बन्ध मे पुस्तक निकाली जाय, यद्यपि जम्बूस्वामी के सम्बन्ध मे अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथापि प्रस्तुत पुस्तक का अपना वैशिष्ट्य है जो पढने पर पाठको को स्वय ज्ञात होगा। हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर युवासाहित्यकार श्री राजेन्द्र मुनिजी ने सक्षिप्त मे जम्बूस्वामी पर सुन्दर पुस्तक लिख दी अत हम उनका हार्दिक आभार मानते है।

मुनिश्री का जन्म दि० १-१-१९५४ मे श्री पुनमचन्दजी धाप कुवरबाई डोसी के गृह मे वडू गाँव मे हुआ। पोषवदी १० मी को जन्मे राजेन्द्र मुनि जी की दीक्षा फाल्गुन सुदी १३ सोमवार दि० १५-३-६५ मे हुई।

श्रद्धेय गुरुदेव श्री के सान्निध्य मे रहकर आपश्री ने सस्कृत प्राकृत हिन्दी गुजराती मराठी आदि का अध्ययन किया है। तथा काव्यतीर्थ, शास्त्री, जैन सिद्धान्ताचार्य, साहित्यरत्न आदि परीक्षाएँ

भी उत्तीर्ण की है। आपश्री की मातेश्वरी ने व बडे भाई ने भी (श्री रमेशमुनि) सयम ग्रहण किया है। आपश्री द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थ हमारी संस्था से प्रकाशित हो चुके है जिसे पाठको ने बडी चाव से अपनाया है। आशा है प्रस्तुत पुस्तक भी पूर्व पुस्तको की भाँति लोकप्रिय बनेगी।

हम प्रोफेसर श्री लक्ष्मण भटनागर जी का एव माननीय श्रीचन्दजी सुराना का हार्दिक आभार मानते है जिन्होने पुस्तक के सम्बन्ध मे सहयोग प्रदान किया है।

मन्त्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

शास्त्री सर्कल

उदयपुर (राजस्थान)

आमुख

साधना, त्याग एव तपस्या की भूमि भारतवर्ष मे समय-समय पर मानवता के रक्षक और सद्गुणो के प्रेरक अनेक महात्मा अवतरित होते रहे है। इन सन्तो, महर्पियो और चिन्तको ने युग की आवश्यकताओ के अनुरूप नये-नये आदर्शो एव सिद्धान्तो का अनुसन्धान किया है, और लोकमण्डल मे उच्च कोटि के योगदान के लिए मानव-इतिहास मे उन्हे अमर ख्याति का लाभ हुआ है। भटकी मानवता को उनके सन्देशो ने युग-युगो तक सन्मार्ग का सकेत किया है। उनके ये सन्देश भारत की प्रमुख आध्यात्मिक एव सास्कृतिक धारा मे मिलकर इस धारा को अधिकाधिक समृद्ध एव सशक्त करते चले गये है।

हमारी सस्कृति की एक अनन्य विशेपता है—उसकी अजस्रता। इस धारा का सतत प्रवाह अटूट रूप से चला आया है। यही कारण है कि हमारी सस्कृति को अमरत्व प्राप्त हुआ है। इस अमरता के पीछे आदर्शो के उन्नायको के साथ-साथ उन उद्योगियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिन्होंने अपने-अपने समय मे उन आदर्शो का व्यापक प्रचार किया, उन्हे जन-जन तक पहुँचाने के पुण्यकार्य मे जिन्होने अपना समग्रजीवन लगा दिया। ऐसे ही महापुरुष उन सिद्धान्तो को व्यापक जनहित की क्षमता प्रदान करते है। भगवान महावीर स्वामी के सर्वग्राह्य मानवीय

सिद्धान्तो को जन-जन के हित मे प्रयुक्त करने के महान अभियान मे भगवान के प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी का गौरवमय योगदान रहा था। इन्ही के उत्तराधिकारी द्वितीय पट्टधर आर्य जम्बूस्वामी थे। सुयोग्य गुरु आर्य सुधर्मा स्वामी के योग्य शिष्य के रूप मे जम्बूस्वामी ने अपने काल मे जितनी व्यापक कीर्ति अर्जित की थी—वह अद्भुत है। वे अत्यन्त प्रभावशाली आचार्य थे और उनके समय मे धर्म की प्रगति भी विपुलता के साथ हुई। श्रमणसघ को निश्चित आकृति मिली और धर्मानुराग वढता चला गया। भगवान महावीर स्वामी के सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार का वह प्रारम्भिक काल ही था, अत. आचार्यों की बड़ी गम्भीर भूमिका स्वाभाविक ही थी और आर्य जम्बू स्वामी ने बडी प्रतिभा और मेधा का परिचय देते हुए उस भूमिका का निर्वाह किया था।

आर्य जम्बूस्वामी आज से कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व जन्मे थे। भगवान महावीर वर्तमान अवसर्पिणीकाल के अन्तिम तीर्थंकर थे और जम्बूस्वामी इस काल के अन्तिम केवली स्वीकार किये जाते है। उनका त्याग और वैराग्य अद्वितीय कोटिका था। अपार वैभव के उत्तराधिकार, स्नेहमय अभिभावको का प्यार और आठ-आठ वधुओ के हृदयोपहार को उन्होने तृणवत त्यागकर सयम ग्रहण कर लिया था। विरक्ति की दिशा मे अग्रसर होने वालो के लिए उनका आचरण अनुपम आदर्श है। पाणिग्रहण के आगामी दिवस ही जम्बूकुमार दीक्षा प्राप्त करने को उद्यत हो गये थे। नव वधुओ ने उन्हे ससार-विमुखता से दूर करने का

प्रयत्न किया, उन्हे अपने दृष्टिकोण और साधनाओ मे परिचित कराया और वधुओ के भ्रामक विचारो का निराकरण करते हुए जम्बूकुमार ने सत्य को प्रकाशित किया। आठो वधुओ ने अपना मन्तव्य आख्यायिकाओ के माध्यम से स्थापित किया था और जम्बूकुमार ने उनका प्रत्याख्यान भी ८ कथाओ के माध्यम से किया।

ये १६ कथाएं ही इस पुस्तक की प्रधान उपजीव्य रही हैं। स्पष्ट है कि एक दृढसकल्पी विरक्त को उसके मार्ग से च्युत करने के लिए कितने सशक्त तर्कों की अपेक्षा रही होगी। उन्ही तर्कों को वधुओ ने कथारूप दिया है। प्रत्येक कथा के उत्तर मे जम्बूकुमार द्वारा प्रस्तुत कथा भी कितनी प्रबल रही होगी, इसका इस तथ्य से सहज ही अनुमान हो जाता है कि अन्तत ये सभी वधुएँ पति के विचारो से प्रभावित होकर स्वय विरक्त हो गयी और पति के सग ही उन्होने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। ये कथाएँ जैन पुराणो का आधार रखती है, किन्तु इनका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवजाति से है। सभी के लिए सन्मार्ग दिखाने की क्षमता इनमे है। अत' इन कथाओ को जैनमतानुयामियो तक मर्यादित समझना औचित्यपूर्ण नही होगा। सत्य तो सत्य ही होता है। उनका वही एक स्वरूप सार्वदेशिक होता है, सार्वकालिक होता है और सभी के लिए वह समान रूप से उपयोगी, लाभकारी और प्रेरक होता है। इन कथाओ के साथ भी यही है। इन कथाओ के माध्यम से आर्य जम्बूस्वामी का अन्तरगी चित्र स्वत ही प्रस्तुत हो जाता है। इसी चित्र की भव्यता को उद्घाटित करने की प्रेरणा इन पक्तियो के लेखक के मन मे घनीभूत रूप से

विगत दीर्घ काल से रही थी। और उसी के प्रयत्न ने इस पुस्तक के रूप मे आकार ग्रहण किया है। यह प्रयत्न नही, आर्य जम्बू स्वामी की पवित्र स्मृति के प्रति हमारा वन्दन-अभिनन्दन है।

निज कवित्त नित लागहि नीका ......' अत पुस्तक के विषय मे तो स्वय सुधी पाठक गण ही मूल्याकन का उचित अधिकार रखते है, वे ही इस दृष्टि से सक्षम भी है। इस कार्य मे जो दोप रह गये हो उनका दायित्व लेखक का है, किन्तु यदि इसमे कतिपय विशेषताएँ, सुन्दरता अथवा उत्तमृता दृष्टिगत हो तो उस सबका श्रेय परम सम्मान्य गुरुदेव राजस्थानकेसरी, आध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज एव प्रसिद्ध जैन चिन्तक, व्याख्याकार एव साहित्य मर्मज्ञ पूज्य गुरुदेव श्री देवेन्द्रमुनिजी को है। आपकी प्रेरणा और कुशल मार्गदर्शन से ही यह सम्भव हो पाया है। भ्राता श्री रमेश मुनिजी का भी सहयोग प्राप्त हुआ है— उनके लिए मैं उसके प्रति आभार-स्वीकार करता हूँ और प्रोफेसर लक्ष्मण भटनागरजी को भी इस अवसर पर विस्मृत नही किया जा सकता जिनकी सहायता से पुस्तक को प्रस्तुत स्वरूप दिया है। मेरा उनके प्रति साधुवाद है।

पुस्तक के विषय मे पाठको के अभिमत से अवगत होने की सदा ही अभिलाषा रहेगी।

—राजेन्द्र मुनि

अनुक्रम

पूर्वखण्ड

उत्तर खण्ड

उपसंहार

परिशिष्ट

मुक्ति का अमर राही : जम्बूकुमार

१ : जन्म-पूर्व : परिवार एवं परिस्थितियाँ

मगध की राजधानी राजगृह मे आज अपूर्व हर्षोल्लास लहरा रहा था। सर्वत्र अद्भुत स्फूर्ति और उत्साह दृष्टिगत हो रहा था। आकर्षक और मूल्यवान वस्त्रालकारो से सज्जित नागरिकजन आर्य सुधर्मास्वामी की अमृतोपम वाणी-श्रवण की लालसा के साथ वैभारगिरि की ओर अग्रसर हो रहे थे। जिन्हे उपदेश-सुधा का पान करने का सुअवसर प्राप्त हो चुका था, उनके मुखमण्डल पर अचल सन्तोप और ज्ञानाभा झलक रही थी और जो इस सुयोग की प्रतीक्षा मे थे, उनके मुख पर आतुरता के चिह्न स्पष्टत. दृष्टिगत हो रहे थे। इन जिज्ञासुजनो का रेला ही बह पडा था—देशना-स्थल की ओर।

आर्य सुधर्मास्वामी भगवान महावीर स्वामी के पचम गणधर और प्रधान शिष्य थे। भगवान के उपदेशो को जन-जन तक पहुँचाने के पुनीत अभियान मे व्यस्त आर्य सुधर्मास्वामी उस युग के परम श्रद्धेय साधक थे और उनकी वाणी मे अनुपम प्रभाव था, जो श्रोताओ को कलुषित पगडडियाँ त्यागकर प्रशस्त धर्म-पथ की ओर अग्रसर होने की सशक्त प्रेरणा देने मे सर्वथा सक्षम था।

उन्होने अपने प्रभाव मे हजारो-लाखो श्रद्धालु जनो को आत्मोत्थान और कल्याण के योग्य वना दिया था ।

राजगृह नगर वैभवाधिक्य के लिए विख्यात था । सम्पन्न परिवारो के कारण ही इस नगर मे विशेष शान्तिपूर्णता थी । इसी नगर मे एक विख्यात श्रेष्ठि ऋषभदत्त भी निवास करता था । उसकी धर्मपत्नी का नाम था—धारिणीदेवी । अतुल सम्पत्ति, सुख, वैभव, व्यापक व्यवसाय, यश आदि का स्वामी ऋषभदत्त अत्यन्त सुखी जीवन यापन कर रहा था । धारिणीदेवी भी अपने स्वामी के सदाचरण, धर्मप्रियता आदि गुणो के कारण अपने आप को भाग्यशालिनी अनुभव किया करती थी । इनके लिए वैसे सर्वत्र सुख-ही-सुख था, किन्तु ससार मे ऐसा कौन है जिसके जीवन मे किसी न किसी प्रकार का दु ख नही रहा हो । इस दम्पति के मानस मे भी जहाँ अपार सुख की राशि थी, उसी के पर्तों के वीच कही एक कसक, एक टीस भी छिपी हुई थी । इस कसक से धारिणीदेवी अपेक्षाकृत अधिक आहत रहा करती थी । जहाँ इनका वैभव असीम था, वही इनका परिवार इन दो प्राणियो तक ही सीमित रह गया था । भाँति-भाँति की साज-सज्जाओ से विभूषित उनका सुन्दर प्रासाद कभी वाल किलकारियो से गुजित नही हो सका था । भाँति-भाँति के पुष्पो से सुशोभित उनका उद्यान नन्हे-नन्हे चरणो का स्पर्श नही कर पाया था । इनके शयन कक्ष की छत की कडियो मे झाड-फानूस तो लटकते रहे, किन्तु कोई पलना उनमे झूल नही सका था । कोकिलकठी धारिणीदेवी के होठो पर कभी लोरियो के स्वर नही थिरके और न ही उसके कानो

ने कभी 'माँ' का सम्बोधन सुना। यह श्रेष्ठि-दम्पति सन्तान-सुख से वञ्चित थे। यह अभाव इतना तीव्र था कि कभी-कभी तो यह समस्त उपलब्ध अपार सुख-सुविधाओ के प्रभाव को ही समाप्त कर देता था। यही कारण था कि प्राय धारिणीदेवी का चित्त गहन चिन्ताओ मे निमग्न हो जाता, उसके मुख पर घोर दुख की छाया मँडराने लगती और उसे एक असह्य रिक्तता का आभास होने लगता था। अपनी गोद का सूनापन धारिणीदेवी के लिए सारे संसार को ही सूना-सूना बना दिया करता था। इस अभाव के कारण वह स्वय को अत्यन्त अभागिनी मानती थी। अपने वैभव के प्रति असारता का भाव उसके मन मे जागरित हो गया था। वह सोचा करती कि अन्तत इस सम्पदा का उत्तराधिकारी कौन होगा। क्या मेरे भाग्य मे मातृ-सुख बदा ही नही है।

श्रेष्ठिदम्पति ने आर्य सुधर्मास्वामी के आगमन का सुसमाचार जब सुना, तो अतीव हर्षित एव प्रफुल्लित होकर उन्होने भी आर्यश्री के चरण-वन्दन और उनकी वाणी से शान्ति लाभ करने का निश्चय किया। दोनो पति-पत्नी ने यथासमय रत्न-जटित स्वर्ण रथ पर आरूढ होकर गन्तव्य स्थल की ओर प्रस्थान किया। चचल और शक्तिशाली अश्व रथ को त्वरा के साथ दौडाये जा रहा था। यह शोभाशाली और अलकृत रथ मानो ऋषभदत्त को प्राप्त अपार वैभव का प्रतीक ही था। रथ को देखकर धारिणी देवी को अपनी अक्षय सम्पत्ति का और सन्तति के अभाव मे उसकी असारता का स्मरण हो आया। उसके मन का सुषुप्त सन्ताप जागरित हो उठा और वह एक गहन खिन्नता से घिर

गयी। उसके सौन्दर्य-सम्पन्न मुखमण्डल पर सहसा हताशा के प्रलेप ने कान्तिहीनता बिखेर दी थी और वह गम्भीर हो गयी थी। आर्य सुधर्मास्वामी की सेवा मे उपस्थित होने के इस पावन अवसर पर धारिणीदेवी सहसा ही दुःखित और चिन्तित हो उठी है—इसके पीछे क्या कारण है, इससे ऋषभदत्त अनभिज्ञ न था। इस गम्भीर और कोमल परिस्थिति मे उसे क्या करना चाहिए—वह इस विषय मे कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। वह जानता था कि सान्त्वना एव प्रबोधन भी ऐसे अवसरों पर धारिणीदेवी के अवसाद को और अधिक गहरा बना देता है। अस्तु, श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने धारिणी का ध्यान अन्यत्र केन्द्रित करने के प्रयोजन मे आर्य सुधर्मास्वामी की महत्ता का प्रसग छेड़ दिया, किन्तु तब भी धारिणीदेवी तटस्थ एव गम्भीर ही बनी रही। रथ तीव्रगति से अग्रसर होता चला जा रहा था। रथ-चक्र की अपेक्षा तीव्रगति से चक्रित हो रहा था धारिणीदेवी का चिन्तामग्न मन। श्रेष्ठि ऋषभदत्त भी एक अचिन्त्य अवसाद मे सहसा ही डूबने-उतराने लगा।

चलते-चलते रथ एक झटके के साथ रुक गया। धारिणीदेवी एव ऋषभदत्त के मुखो पर उत्साह की आभा विकीर्ण हो गयी, किन्तु श्रेष्ठि ने जब बाहर झाँका तो उसे ज्ञात हुआ कि अभी तो रथ मार्ग मे ही है और इनका गन्तव्य स्थल अभी काफी दूर है। उत्साह का स्थान कुतूहल ने ले लिया। श्रेष्ठि सारथी से पूछना ही चाहता था कि रथ क्यो रोक दिया गया, कि उसी समय उस का एक परम मित्र सम्मुख आ गया और जिज्ञासा के लिए अव

कोई स्थान नही रहा। यह जसमित्र था जो निमित्तज्ञ था। अपने इस मित्र से बहुत दिनो पश्चात् भेट कर ऋषभदत्त को बडी प्रसन्नता हुई। धारिणीदेवी को भी हर्ष हुआ। अभिवादनो के आदान-प्रदान के पश्चात् कुशल-क्षेम की औपचारिकता हुई। हाँ, औपचारिकता ही थी, क्योकि धारिणीदेवी और ऋषभदत्त की मानसिक खिन्नता के तट को वह प्रसन्नता की लहरी क्षणिक स्पर्श कर लौट गयी थी और इस खिन्नता से जसमित्र भी अविलम्ब ही परिचित हो गया था। धारिणीदेवी की इस गहन उदासी ने जसमित्र को उद्विग्न बना दिया। रथ-चक्रो की भाँति कुछ क्षण सारा वातावरण गतिहीन रह गया—शब्द-शून्य और भावहीन। अन्ततः मित्र ने मौन भग करते हुए ऋषभदत्त से प्रश्न किया कि श्रेष्ठि मित्र! आज कौन सी विशेष बात हो गयी कि भाभी इतनी गम्भीर और उदास है। इनके मानस मे उठ रहे चिन्ता-ज्वार की स्पष्ट झलक मुखमण्डल पर दिखाई दे रही है। आर्य सुधर्मास्वामी के दर्शनार्थ जाते समय तो एक अपूर्व कान्ति, उत्साह और हर्ष की झलक होनी चाहिए। क्या बात है, मित्र! कारण ज्ञात हो जाने पर कदाचित् मै किसी रूप मे सहायक हो सकूँ। इस प्रश्न पर भी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। दोनो मौन ही बैठे रहे। जसमित्र ने श्रेष्ठि को पुनः सम्बोधित कर कहा कि आखिर बात क्या है? ऋषभदत्त ने क्षीण सी मुस्कान के साथ छोटा सा उत्तर दे दिया कि मित्र! तुम स्वयं ही अपनी भाभी से पूछ देखो न! मेरी मध्यस्थता क्या आवश्यक ही है? अब तो जसमित्र भी गम्भीर हो गया। वह धारिणी देवी की ओर उन्मुख हुआ।

प्रश्न गढने के लिए वह शब्द जुटा ही रहा था कि स्वय धारिणी देवी ही मुखरित हो उठी। वह बोली कि भैय्या, तुम तो निमित्तज्ञ कहलाते हो। तुम्हे भी हमारी किसी परिस्थिति के कारणो की खोज इस प्रकार प्रश्नोत्तर द्वारा करनी पडेगी क्या ? फिर तुम्हारा वह निमित्तज्ञान क्या काम आयगा ! जरा अपनी इस प्रतिभा का चमत्कार भी तो दिखाओ। तुम तो अकथित रहस्य ज्ञात कर लेने की क्षमता रखते हो। फिर क्या मेरी चिन्ता का कारण मुझे ही व्यक्त करना होगा ?

जसमित्र को अपनी भूल का तनिक आभास हुआ और इसकी अभिव्यक्ति भी उसकी खिसियानी-सी क्षीण हँसी मे हो गयी। उसके मन मे जिज्ञासा और कुतूहल का भाव भी अगडाइयाँ लेने लगा, जिसने उसे यथाशीघ्र ही धारिणीदेवी की उदासी का मूल ज्ञात करने के लिए प्रेरित और उत्कण्ठित बना दिया। तुरन्त ही जसमित्र अपने उद्यम मे रत भी हो गया। कुछ क्षण गम्भीर होकर उसके नेत्र निमीलित कर लिये। तनिक से चिन्तन के पश्चात् वह गणना आदि की प्रक्रिया मे व्यस्त हो गया। कभी गणना के किसी परिणाम पर पहुँचने का प्रयत्न करता, कभी पुन अँगुलियो पर गणना आरम्भ कर देता। मित्र पुन गम्भीर हो गया। ऋषभदत्त और धारिणीदेवी अब उत्कण्ठित हो उठे थे। उनकी दृष्टि जसमित्र के मुखमण्डल पर केन्द्रित हो गयी थी। वे मित्र के कण्ठ से नि सृत होने वाली वाणी की प्रतीक्षा करने लगे। जसमित्र इसी प्रकार कुछ क्षण मौन रहा और फिर कहने लगा कि भाभी मेरे निमित्तज्ञान के अनुसार तुम्हे जो चिन्ता प्राय कष्ट देती रहती

है, वही इस समय प्रबल हो उठी है। सन्तति का अभाव तुम्हारे मन को अशान्त वनाये हुए है और वही तीव्र झझावात तुम्हे स्थिर नही रहने दे रहा है। लेकिन भाभी, ...

जसमित्र अपनी आगामी अभिव्यक्ति को नियोजित कर ही रहा था कि श्रेष्ठि-दम्पति आतुर हो उठे। सहज जिज्ञासावश वे समवेत स्वर मे प्रश्न कर बैठे—लेकिन.......यह लेकिन क्या, जसमित्र ? शीघ्र पूरी बात बताओ, तुम रुक क्यो गये ? श्रेष्ठि-दम्पति की इस जिज्ञासा को शान्त करते हुए जसमित्र ने मंगल सूचना दी कि अब समस्त शुभ सकेत दृष्टिगत हो रहे है। तुम्हे यशस्वी पुत्र के माता-पिता होने का सौभाग्य शीघ्र ही प्राप्त होने वाला है। निराशा की घटाएँ बिखरने वाली है, और स्वच्छ नीलाकाश मे अब शुभ आशाओ की रश्मियाँ व्याप्त होने को हैं। ऋषभदत्त, तुम्हारे लिए और भाभी के लिए अव सुख-ही-सुख है—कोई बिन्दु अव अभाव वन कर तुम्हारे जीवन को कण्टित नही कर पायगा। और तनिक ध्यान से सुनो भाभी, तुम्हारा पुत्र साधारण मनुष्य नही होगा भरतखण्ड को अन्तिम केवली देने का गौरव तुम्हे प्राप्त होने वाला है। मेरे वचनो मे मिथ्या का सन्देह भी मत करो और कुछ काल पश्चात् तुम्हे कुछ शुभ स्वप्नो के दर्शन होगे जो मेरे इस कथन को पुष्ट कर देगे। तुम्हे स्वप्न मे एक सिंह दिखाई देगा, जो तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि और मेरे कथन की सत्यता का प्रतीक होगा।

जसमित्र से इन वचनो को सुनकर श्रेष्ठि-दम्पति ने जिस हर्षातिरेक का अनुभव किया उसे शब्दो मे निवद्ध करना कठिन

है। ऋषभदत्त का हृदय तो बाँसो उछलने लगा। धारिणीदेवी का मुखमण्डल ऐसा खिल आया, मानो उस पर चिन्ता और मालिन्य की कोई रेखा कभी रही ही न हो। प्रसन्नता के मारे वे तो अवाक् रह गये। जसमित्र से कुछ कहने मे वे असमर्थ से हो रहे थे। इसी कोमल परिस्थिति मे जसमित्र ने उन्हे पुन. सम्बोधित कर मानो सजग कर दिया। उसने कहा कि सुनो मित्रवर, तुम्हारी इस परम अभिलाषा की पूर्ति मे तनिक सी वाधा है। यह अन्तराय ऐसा है जो तुम्हारे द्वारा की जाने वाली किसी देव की आराधना से ही दूर होगा। चिन्ता का विषय नही है—यह व्यवधान भी अवश्य ही समाप्त होगा और तुम्हारे मनोरथ की पूर्ति अवश्ययभावी है। इतना कह कर निमित्तज्ञ जसमित्र ने हाथ उठाकर अभिवादन किया और सहसा ही अपने मार्ग पर अग्रसर हो गया। ऋषभदत्त और धारिणीदेवी तो अद्‌भुत परिस्थितियो मे घिरे किंकर्त्तव्यविमूढ से ही बैठे रह गये। व्यवधान अवश्य ही दूर होगा—इस घोषणा ने व्यवधान के अस्तित्व को ही दुर्बल बना दिया था। एक नव उमग और उत्साह के साथ ये लोग भी आर्य सुधर्मा स्वामी के दर्शनार्थ आगे बढे।

प्रफुल्लित मन और पुलकित तन श्रेष्ठि-दम्पति शीघ्र ही उस उपवन मे पहुँच गये जहाँ आर्य सुधर्मा की वाणी से लाभान्वित होने वाले श्रद्धालुओ की विशाल सभा जुडी हुई थी। श्रेष्ठि तथा धारिणीदेवी के मन मे इस समय विशेष उत्साह उमड आया था। आर्य सुधर्मास्वामी के मगल दर्शन से ऋषभदत्त

और धारिणी के मन मे अद्भुत शान्ति एव शुचिता व्याप्त हो गयी। एक क्षण के लिए उनके चित्त विकार-शून्य हो गये। आर्यश्री के चरणो के प्रति श्रद्धा और भक्ति का भाव प्रबलतर होने लगा। दोनो ने आर्यश्री के प्रति नमन एव वन्दन किया और अचल मन के साथ यथोचित आसन ग्रहण किये। आर्यश्री की उपदेश-सुधा के सुखद और शान्तिप्रद प्रभाव से ये अभिभूत होने लगे। वे सुध-बुध खोकर इसी सुधा-प्रवाह मे प्रवाहित से होने लगे। अर्द्ध निमीलित नेत्र और करबद्धता से उनके मन की श्रद्धा भावना की गहनता का परिचय मिलता था। इस समय भी धारिणीदेवी के अवचेतन मे कही सतति प्राप्ति के मार्ग मे रहने वाले व्यवधान का विचार अस्तित्व मे था। धारिणीदेवी को उसी का अस्तित्व इस दिशा मे प्रेरित कर रहा था कि आर्यश्री से वह अपने जीवन की अबाधता का आशीर्वाद प्राप्त करे। उसके मन मे ज्यो-ज्यो यह भाव प्रबल होने लगा त्यो ही त्यो अवचेतन मे बसा विचार साकार होने लगा और धारिणीदेवी ने विचार किया कि वह आर्यश्री से विनयपूर्वक प्रश्न करेगी कि किस देव की आराधना से अन्तराय का शमन सभव होगा। आर्यश्री तो परम सामर्थ्यवान है मेरी सहायता अवश्य करेगे। आर्यश्री की यह अनुकम्पा हमारे जीवन का सर्वस्व बन जायेगी—प्राणाधार ही बन जायगी।

इन्ही पलो मे आर्य सुधर्मास्वामी के व्याख्यान मे एक विशेप प्रसग आया। प्रसग था ऋषभदत्त के अनुज का, जिसने अपने जीवन की अन्तिम वेला मे पचपरमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का जाप

किया और इसके फलस्वरूप वह जम्बूद्वीप का अधिपति अनाधृत देव बन गया था। आराध्यदेव की खोज जब धारिणीदेवी कर रही थी—उसी समय इस देव के वृत्तान्त का जो सयोग उपस्थित हो गया था, उसके कारण श्रेष्ठिपत्नी को विश्वास हो गया कि मेरी समस्या का समाधान हो गया। अब मेरे भाग्योदय मे कोई व्यवधान नही। अब हमारे जीवन का अभाव समाप्त होगा, मनोकामना फलित होगी और वात्सल्य तथा ममता की भावना को तोष मिलेगा। धारिणीदेवी ने जम्बूद्वीप के अधिपति अनाधृत देव की आराधना की। देव से उसके परिवार का प्रगाढ सम्बन्ध रहा है—यह भाव धारिणी की आराधना को प्रगाढतर करता गया। जम्बूद्वीप के स्वामी के नाम पर उसने एक सौ आठ आचाम्ल व्रत किये। आराधिका धारिणीदेवी के मन मे साफल्य के विश्वास का प्रकाश भी उत्तरोत्तर प्रखर होने लगा और उत्फुल्लता का विकास होने लगा।

□

२ : पूर्वभव एव देहधारण

ब्रह्मलोक मे एक सुविख्यात देव थे, जिनका नाम था—विद्युन्माली। विद्युन्माली देव की चार पत्नियाँ थी। ये चारो देवियाँ अत्यन्त पति-परायणा थी। वे निरन्तर अपने पतिदेव की ही सेवा मे व्यस्त रहती थी और विद्युन्माली देव भी अपनी सभी पत्नियो से असीम प्रेम करते थे। सुकोमल व्यवहार उनके आचरण की विशेषता थी। परम सुखी जीवन व्यतीत करते हुए सुदीर्घ काल ब्रह्मलोक मे हो गया। अन्तत: इनके ब्रह्मलोक-वास की अवधि की समाप्ति भी समीप आ गयी थी।

मगध राज्य की राजगृह नगरी के वैभवशाली और धर्म परायण श्रेष्ठि ऋषभदत्त और उसकी धर्मपत्नी धारिणीदेवी का तो अब जैसे जीवन स्वरूप ही बदल गया था। इष्ट-प्राप्ति की बलवती आशा ने उनके समस्त कष्टो का जैसे हरण ही कर लिया था। अब धारिणीदेवी को अपने वैभव और सम्पत्ति मे असारता का अनुभव नही होता था। अपने सुसज्जित भवन मे अब उसका जी खूब लगने लगा था। उसने रुचिपूर्वक अपने निजी कक्षो की साज-सज्जा को अधिक अभिवर्धित कराया।

माता द्वारा स्वप्न-दर्शन

धारिणीदेवी का शयनकक्ष तो विशेष रूप से सँवर गया था। स्वर्णखचित भित्तियो पर ललाम पच्चीकारी का सौन्दर्य,

आकर्षक चित्रो की सजावट, सुगन्धित सुन्दर पुष्पो से अलकृत यह कक्ष स्वय एक नवागत कुलवधू सा प्रतीत होता था। गवाक्षो से आने वाला मन्द-मन्द पवन उपवन से राशि-राशि सौरभ लेकर आता था। रत्नजटित पर्यंक पर धारिणीदेवी लेटी हुई थी। मन भावी सुख की कल्पनाओ मे निमग्न था। अलसायी देह तन्द्रा का अनुभव करने लगी। अनुकूल शान्त वातावरण पाकर तन्द्रा कब निद्रा मे परिणत हो गयी—धारिणीदेवी को इसका भान नही रहा। रगीन कल्पनाएँ उसकी बन्द पलको मे अब भी थी जो निद्रा मे घुलकर नवीन स्वप्नलोक की सृष्टि करने लगी थी। इस नये सुरम्यलोक की रम्यवीथियो मे विचरण करती हुई धारिणीदेवी लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करने लगी। स्वप्नो की मायानगरी के विभिन्न दृश्य वह देखती-भूलती चली जा रही थी। इस यात्रा के क्रम मे ही रात्रि का अन्तिम चरण आ पहुँचा। तभी अर्धनिद्रित धारिणीदेवी ने स्वप्न मे एक सिह के दर्शन किये। इसका विचित्र ही प्रभाव उस पर हुआ। सिह को समक्ष उपस्थित देकर भी न वह भयभीत हुई न उसकी देह मे तनिक भी कम्पन हुआ। वह यथावत् आश्वस्त बनी रही। कुछ ही क्षणो मे उसने नभमण्डल से एक हरे-भरे वृक्ष को नीचे उतरते देखा। पल्लवो से लदे इस वृक्ष के समीप आ जाने पर धारिणीदेवी ने उसे पहचान भी लिया। अरे! यह तो जम्बू का वृक्ष है और श्यामवर्णी सरस फलो से भी यह लदा हुआ है। ऐसा सुन्दर वृक्ष और ऐसे स्वस्थ जम्बू फल धारिणीदेवी ने कभी देखे नही थे। वह आश्चर्यपूर्वक यह सब देखती रह गयी। वृक्ष उसके समीप से

समीपतर आता जा रहा था और उसे ऐसा स्पष्ट अनुभव हुआ कि जैसे मुखमार्ग से वह जम्बू वृक्ष उसके उदर मे पहुँच गया है। यह वही पल था, जब विद्युन्माली देव की ब्रह्मलोक की आवास-अवधि समाप्त हो गयी थी और उसका जीव धारिणीदेवी के गर्भ मे स्थापित हो गया था। अकल्पित आनन्दानुभूति से श्रेष्ठितिय धारिणीदेवी पुलकित हो रही थी। इन विचित्र स्वप्नो मे चौककर धारिणीदेवी सहसा जाग उठी। जाग जाने के पश्चात् भी धारिणी देवी जैसे कुछ पल उसी मायानगरी मे खोयी रही। फिर मधुर शब्दो से पति को जगाया। ऋषभदत्त ने अत्यन्त कोमल स्वर मे पूछा—प्रिये, क्या बात है ? तुमने कोई स्वप्न तो नही देखा है ? उसने सक्षिप्त उत्तर दिया कि हाँ, मैंने स्वप्न देखा है। जब जिज्ञासावश ऋषभदत्त ने स्वप्न का वृत्तान्त कह सुनाने का आग्रह किया, तो धारिणीदेवी ने मृगराज और जम्बू वृक्ष के स्वप्नो का वर्णन कर दिया। यह वृत्तान्त सुनकर श्रेष्ठि ऋषभदत्त को बहुत सन्तोष हुआ। उसने विस्मित धारिणीदेवी को जसमित्र के कथन का स्मरण दिलाया कि वह स्वप्न मे सिंह का दर्शन करेगी जो उसके मनोरथ-सिद्धि का शुभ सकेत होगा।

यह स्मरण आते ही धारिणीदेवी की तो बाँछे ही खिल गयी। उसे अतिशय हर्ष का अनुभव होने लगा। पति ने उससे कहा कि प्रिये, अब इसमे तनिक भी सन्देह नही रहा कि शीघ्र ही तुम्हे तेजस्वी, पराक्रमी और धर्मप्रिय पुत्र की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त होने वाला है। हमारे लिए सुसमय अब समीप

है। प्रिये, भाग्य हम पर अत्यन्त कृपालु है और अब हमे कोई चिन्ता नही, धारिणी, अब कोई चिन्ता नही।

प्रात काल ही श्रेष्ठिवर ने राज्य के प्रतिष्ठित और विख्यात स्वप्नफलदर्शक पडितो को अपने यहाँ निमन्त्रित किया। अतिथि-सम्मान के लिए प्रसिद्ध ऋषभदत्त ने इन विद्वज्जनो का हृदय से स्वागत-सत्कार किया और श्रेष्ठ आसनो पर विराजित किया। पडितो की इस सभा मे धारिणीदेवी और ऋषभदत्त विनयपूर्वक खडे रहे और धारिणीदेवी द्वारा गतरात्रि मे देखे गये स्वप्नो का समग्र वृत्तान्त निवेदन कर उसके प्रभाव और भावी परिणाम जानने की जिज्ञासा प्रकट की। स्वप्नो का वृत्तान्त सुनकर पडितो मे परस्पर विचार-विमर्श होने लगा। अविलम्ब ही वे स्वप्नफल दर्शक एकमत हो गये और निष्कर्षत यह घोषित किया कि महाभाग! धारिणीदेवी ने जो स्वप्न देखे है वे अत्यन्त दिव्य और भव्य है। उसका सुनिश्चित परिणाम परम धर्मप्रिय, यशस्वी और लोक मगलकारी पुत्र की प्राप्ति के रूप मे प्रकट होता है। बधाई हो श्रेष्ठिवर, आपको ऐसी पुण्यशाली सन्तति के जनक होने का गौरव प्राप्त हुआ है। सौभाग्यशालिनी धारिणीदेवी के गर्भ से तेजस्वी पुत्र यथासमय जन्म लेकर जगत् को कल्याण का मार्ग दिखायेगा और प्राणियो को उस मार्ग पर गतिशील होने के लिए प्रेरणा एव क्षमता प्रदान करेगा। ऐसे पुत्र के कारण आप ही नही मगध भी धन्य हो जायगा और समग्र जम्बूद्वीप उपकृत हो जायगा। विश्वस्त विद्वानो की प्रामाणिक भविष्यवाणी से श्रेष्ठि-दम्पति ने विचित्र गरिमा का अनुभव किया। गद्गद् कण्ठ से

उन्होने इन विद्वानो का आभार स्वीकार किया और विपुल द्रव्यादि दक्षिणास्वरूप अर्पित कर उन पडितो को सादर विदा किया ।

देह धारण

ब्रह्मलोक से च्युत होकर विद्युन्माली देव का जीव धारिणी देवी के गर्भ मे स्थित हुआ और समय-यापन के साथ-साथ गर्भ स्वाभाविक रूप मे विकसित होता रहा । गर्भस्थ प्राणी के प्रभाव स्वरूप धारिणी की रुचियो और प्रवृत्तियो मे अद्भुत परिवर्तन हो गया । उसकी देह की कान्ति में तो अभिवृद्धि हुई ही, धर्मरुचि भी विकसित होने लगी थी । दीन-दुखियो के प्रति सद्भावना और सेवा-सहायता का भाव उसके मन मे प्रबल हो गया और वह तन-मन-धन मे उनकी सेवा करने लगी । वह सद्विचारो मे लीन रहने लगी और आचरण-शुचिता का प्रतिक्षण वह ध्यान रखने लगी । ऋषभदत्त भी धर्म-कर्म मे अधिक रुचिशील हो गया और वह मुक्तहस्त से दानादि पुण्य कार्यों मे प्रवृत्त हो गया ।

धारिणीदेवी ने यथासमय अत्यन्त तेजवान पुत्र को जन्म दिया । कर्णिकार की मधुर सौरभ से युक्त नवजात शिशु की देह मे अद्भुत कान्ति थी । कुन्दनवर्णी इस बालक मे समस्त दैहिक शुभ लक्षण थे । बालरवि-सा उसका मुखमण्डल प्रताप-पुज लगता था । पुत्र-रत्न की प्राप्ति का शुभ सवाद पाकर पिता ऋषभदत्त की प्रसन्नता का तो पारावार ही नही रहा । सारे प्रासाद मे अपूर्व हर्ष का ज्वार उभर आया था । श्रेष्ठि को बधाइयाँ देने को सभी वर्ग के जन आने लगे । सभी को उचित उपहार-भेट आदि से

सम्मानित किया गया। ऋषभदत्त ने प्रचुर दान दिया और सभी की मंगलकामनाओं का पात्र बना। श्रेष्ठि-प्रासाद मंगल गीतों से गूंज उठा। १२ दिवस तक उत्सवों का आयोजन हुआ और हृदय के अतुलित हर्ष को विविध प्रकार से अभिव्यक्ति मिलती रही।

नामकरण संस्कार

अब बारी थी श्रेष्ठि-पुत्र के नामकरण संस्कार की। अत्यन्त शुभ मुहूर्त में तत्सम्बन्धी समारोह आयोजित हुआ। विद्वान ज्योतिषियों को विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। दूर-समीप के समस्त स्वजन-परिजन, प्रतिष्ठित नागरिकजन, शुभाकांक्षीजन सभी समारोह में सम्मिलित हुए। पिता ने पंडितों से बालक के नामकरण के लिए प्रार्थना की। पंडितों ने समस्त परिस्थितियों पर पूरी तरह विचार किया और माता धारिणीदेवी ने स्वप्न में जम्बू वृक्ष का दर्शन किया था और जम्बूद्वीप के अधिपति अनाधृत देव की कृपा स्वरूप ही श्रेष्ठि-दम्पति को पुत्र की प्राप्ति हुई थी—इस आधार पर बालक नाम 'जम्बूकुमार' रखा गया।

३ : बाल-जीवन

अब ऋषभदत्त और धारिणीदेवी के जीवन मे रस ही रस था। धारिणीदेवी की गोद मे जम्बूकुमार के रूप मे मानो समस्त सुखो का सार ही किलकारियाँ भर रहा था। द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति यह नवजात शिशु विकसित होने लगा। उसी भाँति उसके सौन्दर्य और कान्ति मे भी वृद्धि होने लगी और हर्ष की चाँदनी श्रेष्ठि-प्रासाद मे अधिकाधिक रूप में व्याप्त होने लगी। घुटनो के बल चलते जम्बूकुमार को देखकर माता धारिणी को तो ऐसा अनुभव होने लगता था मानो उसकी चिरपोषित अभि-लाषा ही देह धारण कर उसके आँगन मे विचरने लगी है। कभी-कभी उसकी दृष्टि पुत्र के मुखमण्डल पर केन्द्रित हो जाती और उसका मन पुत्र के भावी स्वरूप की कल्पनाओ मे खो जाता। ऐसे क्षणो मे वह बालमुख उसके सामने से अदृश्य हो जाता और एक भव्य व्यक्तित्व वाला ओजस्वी युवक उसका स्थान ले लेता था। उसका मन अत्यधिक प्रमुदित हो उठता। धारिणीदेवी जम्बू-कुमार के भावी जीवन की योजनाओ मे लग जाती और काल्पनिक सुखो की परिधियाँ उत्तरोत्तर व्यापकतर होती जाती। उसकी कामना थी कि अनेक वधुओ की पायले उसके भवन को गुंजित कर देगी और नन्हे-मुन्ने शिशुओ की शुभ किलकें अद्भुत सुखद उजाला चकाचौंध सी उत्पन्न कर देगा। माँ धारिणीदेवी के

मानस-सरोवर मे स्नेह और ममता की लोल लहरियाँ उठती रहती और स्निग्ध वचनावली एव मधुरतम व्यवहार के रूप मे उनकी शीतल बौछार बालक जम्बूकुमार को हर्षित कर देती थी। माता ऐसे पुत्र को प्राप्त कर धन्य हो गयी थी और ऐसी ममतामयी माता को पाकर पुत्र निहाल हो गया था।

शनै-शनै. जम्बूकुमार की आयु बढने लगी और अब वह शिक्षा-प्राप्ति के योग्य हो गया। सम्पन्न श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने जम्बू कुमार के लिए शिक्षा की अत्युत्तम व्यवस्था की। सुयोग्य आचार्यों को विभिन्न विद्याओ के लिए नियुक्त किया गया। बालक जम्बू कुमार भी दत्तचित्तता के साथ अध्ययन करने लगा। बालक बडा ही कुशाग्रबुद्धि था। वह शीघ्र ही ज्ञान को हृदयगम कर लिया करता था। जम्बूकुमार की अद्भुत प्रतिमा देखकर आचार्यगण चकित रह जाया करते थे। अल्पावधि मे ही जम्बूकुमार ने अनेक विद्याओ और ७२ कलाओ मे अद्भुत प्रवीणता प्राप्त कर ली। अब तो उसके समक्ष जीवन और जगत् के रहस्य स्पष्ट होने लगे थे। मौलिक चिन्तन की प्रवृत्ति जम्बूकुमार मे सहजत ही थी। अत अर्जित ज्ञान के आधार पर वह अपने चिन्तन के बल पर जीवन को समझने और जगत् के सार को पहचानने का प्रयत्न करने लगा।

आयु के साथ-साथ जम्बूकुमार की इस प्रवृत्ति मे भी गहनता और व्यापकता आने लगी। 'हस्तामलकवत्' यह जगत् और जीवन उसके समक्ष स्पष्ट हो गया। कोई सुन्दर और सरस आवरण जम्बूकुमार के लिए यथार्थ तक पहुँचने मे व्यवधान नही बन

पाता था। किशोर जम्बू की यही प्रवृत्ति उनके उदात्त भविष्य के निर्माण को मूल आधार सिद्ध हुई।

बाल्यावस्था से ही जम्बूकुमार के मन मे मानवीयता के सद्लक्षण थे। पर-दु ख-कातरता का भाव तो उनके मन को द्रवित ही कर देता था। वे किसी को कष्ट मे देख ही नही पाते थे। दु खियो को देखकर उनके नयन छलछला आते थे। उनका परोपकारी हृदय दु.खियो की सेवा-सहायता के लिए उन्हे प्रेरित करता रहता था और वे अपने पास उपलब्ध सामग्री का दान कर उनको कष्ट-मुक्त करने मे ही अपने जीवन की सार्थकता का अनुभव किया करते थे। अन्न, वस्त्र, धनादि के दान मे उन्होने कभी कृपणता नही बरती।

जम्बूकुमार की बाल्यावस्था के समय का ही एक प्रसग है कि एक समय मगध मे भीषण दुर्भिक्ष का सकट आया। अन्नाभाव के मारे जनता तड़प-तडप कर प्राण त्याग रही थी। जीवित जन भी अस्थिचर्म के ढाँचे मात्र रह गये थे। अन्न के एक-एक दाने के लिए लोग सब कुछ करने को तत्पर थे, किन्तु उनको कही से अन्न उपलब्ध न हो पाता था। माता-पिताओ के समक्ष उनकी प्रिय सन्तान भूख से तडप-तडप के मृत्यु की ग्रास हो रही थी। सर्वत्र हाहाकर, क्रन्दन और चीख-पुकार का ही साम्राज्य था। ऐसे ही समय किशोर जम्बूकुमार नगर-भ्रमण को निकले और राजगृह मे मृत्यु की इस विभीषिका को देखकर उनका मन सहानुभूति की भावना से भर उठा। परोपकारी जम्बूकुमार इन दु.खित जनो के प्रति करुणा प्रकट करके ही शान्त हो जाने वाले

नही थे। ऐसी करुणा को वे अपूर्ण मानते थे, जब तक कि उपलब्ध साधनो का उपयोग कर यथासामर्थ्य सेवाकार्य न किया जाय। वे इन भूखो को अपने भवन पर ले आये। देखते ही देखते एक खासा जमघट लग गया। सभी ओर से याचना के स्वर उठने लगे। दु खी जन इस समय अन्न की नही वरन् अन्न के रूप मे प्राणो की ही भीख माँग रहे थे।

इस समय पिता ऋषभदत्त कार्यवश नगर से बाहर गये हुए थे। जम्बूकुमार ने अन्न-भाण्डार खुलवा दिया। सारा एकत्रित अन्न उन्होंने इस भूखो मे वितरित करवा दिया। कुछ ही समय मे भाण्डार रिक्त हो गया। लाखो प्राणियो की जीवन-रक्षा हो गयी—इससे जम्बूकुमार को अत्यन्त प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव होने लगा। भाँति-भाँति के आशीर्वाद और शुभ कामनाएँ करते हुए, अन्न लेकर ये दु खी जन विदा हुए। जम्बूकुमार उनके प्राणरक्षक हो गये थे—इससे महान इस ससार मे किसी के लिए भला और कोई क्या होगा।

जम्बूकुमार ने जो कुछ किया, इसमे उन्हे तनिक भी अनौचित्य नही लग रहा था। अत. पिता की अनुपस्थिति के कारण भी अपने कार्य से उन्हे किसी प्रकार की चिन्ता या भय नही था। कुछ ही समय मे जब श्रेष्ठि ऋषभदत्त लौट कर आया तो उसने पाया कि कुछ अन्न द्वार पर और कुछ आँगन मे बिखरा पडा है। अनेक पद-चिह्नो मे यह आभास भी उसे होने लगा कि कुछ ही समय पूर्व यहाँ अनेक जन एकत्रित हुए हैं। तुरन्त उसे यह अनुमान हो गया कि यहाँ दुर्भिक्ष-ग्रस्तो को अन्न-दान किया गया

होगा। उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जब उसने देखा कि अन्नभण्डार तो सर्वथा रिक्त पड़ा हुआ है। इतना अन्न, सारा का सारा दान दे दिया गया !! किन्तु ऋषभदत्त ने अपनी कोई प्रतिक्रिया प्रकट नही होने दी। कुछ ही पलों मे जम्बूकुमार स्वय ही पिता के समक्ष उपस्थित हो गये। वे इस समय सर्वथा शान्त मुद्रा मे थे और अपने कार्य पर सन्तोष का भाव उनकी भगिमा मे स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रहा था। श्रेष्ठि ऋषभदत्त अपने पुत्र से निश्चित ही इस समय कुछ पूछना चाहते थे, किन्तु वे अपने प्रश्न को एक उचित आकार देने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि जम्बूकुमार ने स्वत. ही कथन का आरम्भ कर दिया। उन्होंने पिता को सम्बोधित करते हुए कहा कि मुझे आज पहली ही बार यह ज्ञात हो सका है कि हमारे राज्य मे दुर्भिक्ष के कारण कितनी विकट विपत्ति छायी हुई है। आज मैं भ्रमण के लिए निकला था। मैंने देखा कि राजगृह के प्रजाजन अकाल से अत्यधिक पीड़ित है और उनके प्राण सकट मे है। उन असहायो की यह दीन-दशा मैं देख नही सका, पिताजी ! और मैंने उनकी तनिक-सी सहायता कर दी है। अपने अन्नागार मे अपार भण्डार था। मैंने वह सारा अन्न असहायो मे वितरित कर दिया है। हमारा सग्रह ऐसी घोर विपत्ति मे भी यदि प्रयुक्त न हो सके तो उसका प्रयोजन ही क्या ? उन बेचारो के तो जाते हुए प्राण ही लौट आये थे। उनके मुख पर जो सन्तोष का भाव आया था, उसे देखकर तो मुझे असीम प्रसन्नता हुई। यदि ऐसे समय मे भी 'जब लाखो जन भूख की पीडा से मृत्यु के ग्रास बन रहे हो, यदि हम अपने अन्न को सुर-

क्षित पडा रखे, तो इससे बढकर हमारे लिए और कोई घोर पाप कर्म हो ही नही सकता ।

अब ऋषभदत्त के लिए कुछ भी शेप न बचा था । वह क्या प्रश्न करता ? कुछ क्षण तो वह मौन रह कर पुत्र की सदगुण-शीलता पर ही विचार करता रह गया । उसने पुत्र के इस सत्कर्म के लिए साधुवाद करते हुए कहा कि वत्स ! तुमने निस्सन्देह उपयुक्त कर्म किया हे । तुम मानवमात्र के लिए सहानुभूति और करुणा का इतना गहनभाव रखते हो—इसका ज्ञान मुझे आज पहली बार ही हुआ है । समसुच ! मुझे इसकी बड़ी प्रसन्नता है । जम्बूकुमार के इस आचरण से ऋपभदत्त को मन ही मन गर्व का अनुभव होने लगा था और उसे इस बात का विश्वास भी होने लगा था कि जम्बूकुमार का धवल यश समग्र ससार मे व्याप्त होगा और एक दिन अवश्य ही हमारे वश को महत्ता प्राप्त होगी ।

जम्बूकुमार के चरित्र की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी थी कि वे अटल सत्यशील थे । वे कभी भी किसी प्राणी को कष्ट नही पहुंचाते थे । सदा सावधानी के साथ कार्य करते थे कि कही किसी क्षुद्र से जन्तु को भी उनके कारण कोई हानि न हो । अपने इन्हीं सदगुणो के कारण जम्बूकुमार अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे और सारा राजगृह उनके प्रति ममता और प्रेम का भाव रखने लगा । धीरे-धीरे दूर तक उनके गुणो और कर्मों की चर्चा फैल गयी और उनका यश मगध राज्य की सीमा लांघ कर समस्त जम्बूद्वीप मे प्रसारित होने लगा ।

४ : गृहस्थ जीवन का उपक्रम

जम्बूकुमार अत्यन्त सम्पन्न परिवार के तो थे ही ! ऐश्वर्य उनके चरणो का दास था और सुख-सुविधाये उनके समक्ष नत-मस्तक खड़ी आदेश की प्रतीक्षा मे रहा करती थी । पिता का सुनाम भी उनके व्यक्तित्व की भव्यता को किसी अंश तक अभि-वर्धित ही करता था । अनुपम सौन्दर्यसम्पन्न जम्बूकुमार जब यौवन की सीमा के समीप पहुँचने लगे तो अनेक रूप-गुणवती कन्याओ के पिता लालायित रहने लगे—अपनी कन्या का सम्बन्ध जम्बूकुमार के साथ करने को । ऋषभदत्त की भव्य सामाजिक प्रतिष्ठा, जम्बूकुमार की महान सद्गुणशीलता आदि के कारण उनके मन मे एक विशेष प्रकार का सकोच भी घर कर जाता था और प्रस्ताव करने मे उन्हे हिचक-सी अनुभव होने लगती थी ।

जम्बूकुमार अपने पूर्वभव मे ब्रह्मलोक मे जब विद्युन्माली देव थे तो उनको चार पत्नियाँ थी । कुछ समय के पश्चात इन चारो देवियो का जन्म भी राजगृह के ही सम्पन्न श्रेष्ठि परिवारो मे हुआ । एक देवी ने श्रेष्ठि समुद्रप्रिय के घर जन्म लिया और उसका नाम रखा गया समुद्रश्री । कन्या समुद्रश्री की माता का नाम पद्मावती था । दूसरी देवी का इस जन्म का नाम पद्मश्री था उसके पिता तथा माता का नाम (क्रमश) समुद्रदत्त और

कमलमाला था। श्रेष्ठि सागरदत्त के यहाँ तीसरी देवी ने जन्म लिया उसका नाम पद्मसेना रखा गया था और उसकी माता का नाम विजयश्री था। इसी प्रकार चौथी देवी ने भी राजगृह के विख्यात श्रेष्ठि कुवेरदत्त की पुत्री के रूप मे जन्म लिया जिसका इस जन्म का नाम कनकसेना था व जयश्री उसकी माता का नाम था। यह अद्‌भुत सयोग था कि विद्युन्माली देव और उनकी चारो पत्नियो ने कुछ समय के पश्चात एक ही नगर मे जन्म लिया। स्पष्ट है कि ये सभी प्राय समवयस्क भी थे।

श्रेष्ठि ऋषभदत्त के पुत्र जम्बूकुमार के रूप, गुण, यश और ऐश्वर्यादि से प्रभावित होकर समुद्रश्री, पद्मश्री, पद्मसेना और कनकसेना के माता-पिता की हार्दिक अभिलाषा थी कि उनकी पुत्रियो का जम्बूकुमार के साथ विवाह हो जाय। उन अभि-भावको ने इस दिशा मे प्रयास भी आरम्भ कर दिये।

इनके अतिरिक्त राजगृह के चार अन्य वैभवशाली श्रेष्ठि भी अपनी-अपनी कन्यायो के लिए इस दिशा मे प्रयत्न कर रहे थे। श्रेष्ठि कुवेरसेन अपनी पुत्री नभसेना का हित जम्बूकुमार के साथ उसके पाणिग्रहण सस्कार हो जाने मे ही मानने लगा था। नभ-सेना की माता का नाम था कमलावती। श्रेष्ठि श्रमणदत्त की कन्या थी कनकश्री और सुपेणा था उस कन्या की माता का नाम। वसुसेन अन्य श्रेष्ठि था, जिसकी पत्नी का नाम था वीरमती। इस दम्पति की पुत्री थी—कनकवती और वसुपालित नामक श्रेष्ठि की पुत्री थी जयश्री। जयसेना जयश्री की माता का नाम था।

एक साथ ही इन आठ श्रेष्ठियो ने अपनी-अपनी पुत्रियो ममुद्रश्री, पद्मश्री, पद्मसेना, कनकसेना, नभसेना, कनकश्री, कनकवती और जयश्री के विवाह के लिए जम्बूकुमार के पिता के पास प्रस्ताव भेजे। इतने प्रस्तावो को देखकर ऋपभदत्त और धारिणीदेवी को बडी प्रसन्नता हुई। उस युग मे पुरुष कई स्त्रियो से विवाह किया करते थे। अत जम्बूकुमार के माता-पिता के समक्ष इन कन्याओ मे से किसी एक के चयन की समस्या नही थी। माता-पिता ने गम्भीरता के साथ इन आठो प्रस्तावो पर विचार किया। ये श्रेष्ठिगण तो जाने-माने थे और ऋषभदत्त का इन सबसे सीधा परिचय एव सम्पर्क था। इनकी पारिवारिक पृष्ठ-भूमि के विषय मे वह भली-भाँति जानता था। ये सभी प्रभुत्व-सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार थे और ऋपभदत्त का विचार था कि इन परिवारो के साथ सम्वन्ध होने से स्वय उसकी प्रतिष्ठा मे भी वृद्धि होगी। ये परिवार धर्मानुरागी, सुरुचिसम्पन्न और सुसस्कृत भी थे। अत धारिणीदेवी के समक्ष ऋषभदत्त ने अपनी ओर से इन प्रस्तावो पर स्वीकृति का भाव व्यक्त किया। अब तो धारिणीदेवी की ही भूमिका थी। उसे इन कन्याओ के विषय मे जानकारी प्राप्त करनी थी। उसने अपना कार्य बडे सौजन्य के साथ किया और इस निष्कर्प पर पहुँची की रूप, गुणादि मे ये सभी कन्याएँ प्रत्यन्त वढी-चढ़ी है, सर्वगुणसम्पन्न हैं। इनमे से प्रत्येक जम्वूकुमार के योग्य है। वधुओ के रूप मे जब ये कन्याएँ हमारे घर आयेगी तो हमारे यहाँ मानो विभिन्न प्रकार के पुष्पो की वाटिका ही खिल उठेगी। उनकी मधुर वाणी से सारा भवन

गूंजता रहेगा। कैसा मधुर वातावरण हो जायगा मेरे घर मे। वह उस पल की कल्पना मे ही आनन्दित हो उठी। उसने अपने पति के समक्ष अपना मत प्रकट करते हुए यही कहा कि ये आठो कन्याएँ अत्यन्त सुशील, गुणवती और सुन्दर है। गुणो मे कौन सर्वश्रेष्ठ है—यह निर्णय करना भी असम्भव है। उनमे से प्रत्येक अपने किसी न किसी गुण के कारण सर्वश्रेष्ठ कहला सकती है। ये कन्याएँ ज्ञानवती है, विदुषी है। मेरे मत मे तो इन सभी के लिए हमे स्वीकृति भेज देनी चाहिए। अविलम्ब ही ऋषभदत्त भी अपनी पत्नी से सहमत हो गया। शीघ्र ही आठो श्रेष्ठियो के पास सम्मान सहित उनके प्रस्तावो की स्वीकृति का सन्देश भिजवा दिया। राजगृह के नौ श्रेष्ठि-परिवारो मे हर्ष व्याप्त हो गया। मगलगान होने लगे, जिनकी गूंज एक साथ चौबीस हृदयो को थिरकाने लगी।

●

५ : वैराग्योदय

मनुष्य का भविष्य यथार्थ ही मे 'अदृष्ट' होता है। किसी के भवितव्य का अनुमान लगाना सुगम नही हुआ करता। श्रेष्ठि ऋषभदत्त और धारिणीदेवी ने जम्बूकुमार के सुखद गृहस्थ-जीवन की बड़ी ही भव्य और सरस कल्पनाएँ सँजो रखी थी। उन कल्पनाओ को आकार देने मे भी श्रेष्ठिदम्पति तत्परतापूर्वक व्यस्त थे। इसी योजना की क्रियान्विति के प्रथम चरण के रूप मे ही जम्बूकुमार का विवाह आठ सुलक्षणा कन्याओ के साथ निश्चित भी किया जा चुका था। जम्बूकुमार के भवितव्य से अनभिज्ञ इन अभिभावको की दशा कितनी दयनीय थी कि वे अपनी योजनाओ के सर्वथा ध्वस्त हो जाने के भावी तथ्य से सर्वथा अनजान थे। इधर उनकी सतरगी कल्पनाएँ सघन से सघनतर होती जा रही थी और उधर जम्बूकुमार का मन अन्य ही दिशा की ओर आकृष्ट होता चला जा रहा था।

आरम्भ मे ही जम्बूकुमार का मन जीवन और जगत् की उलझनो को सुलझाने के लिए मौलिक प्रयत्नो मे व्यस्त रहने लगा था। वे अन्तर्मुखी से हो गये थे। चिन्तनशीलता उनके स्वभाव का सहज अग था। गम्भीरता के साथ मानव जीवन के उच्चतम प्रयोजन को पहचानने की प्रक्रिया मे वे मगन रहा करते। प्राणियो

की दु खद परिस्थितियो से द्रवित होकर वे सोचा करते कि क्या कोई ऐसा मार्ग नही है, जिमका अनुसरण करके मनुष्य का जीवन अनन्त सुख का उपभोग कर सके, ससार की आमारता से उवर सके और शान्ति का लाभ कर सके ।। उनके अन्तर्मन मे एक स्वर उठता था कि हाँ, अवश्य ही ऐसा कोई मार्ग है । आवश्यकता उसे खोजने की है और तब उन्हे अन्त प्रेरणा प्राप्त होती कि मै उस मार्ग को खोजने के विनीत प्रयास मे अपना समस्त जीवन लगा दूँगा । धान्य भाग ! यदि मैं ऐसा करने मे सफल हो सका ।

जम्बूकुमार ने मन ही मन इस नवीन मार्ग को अपनाने का दृढ सकल्प कर लिया था । इसके साथ ही जीवन की दारुण समस्याओ के प्रश्न और अधिक स्पष्ट होकर उनके समक्ष उभरने लगे । वे जगत् को असार मानकर उससे खिंचे-खिंचे से रहने लगे । सासारिक सुखो मे उनका मन नही रमता था । तटस्थ भाव से ही वे पारिवारिक जीवन जीने लगे थे । उन्हे सम्बन्धो के निर्वाह मे रसानुभूति नही होती । एक प्रकार से उनका जीवन एक नवीन मोड की प्रतीक्षा मे था, किसी दिशा-सकेत की टोह मे था । अनेक ऐसे आरम्भिक प्रश्न थे, जिनकी तह मे पहुँचने के लिए उन्हे मर्मज्ञ मार्गदर्शक की आवश्यकता थी । अपने चिन्तन से वे जिस अनुभव तक पहुँचना चाहते थे—उसके लिए सज्ञान और चैतन्ययुक्त पथ-प्रदर्शक की उन्हे तीव्र अपेक्षा थी ।

सयोग की ही वात है कि उन्ही दिनो आर्य सुधर्मास्वामी का पदार्पण पुन राजगृह मे हुआ । इस समाचार से जम्बूकुमार का मन खिल उठा । उन्हे ऐसा अनुभव होने लगा—मानो अव

कोई प्रश्न अन-सुलझा नही रहेगा, अनुत्तरित नही रहेगा। आर्य सुधर्मास्वामी के आगमन से सर्वत्र उत्साह की एक लहर दौड पडी थी वे अपने विशाल श्रमण सघ के साथ गुणशीलक चैत्य मे विश्राम करने लगे थे। प्रतिदिन श्रद्धालु जनो का विशाल समूह एकत्रित होता, आर्यश्री के दर्शन-लाभ से शान्ति और पवित्रता का अनुभव करता और आपके वचनामृत से तृप्त होता। मन मे अनेकानेक जिज्ञासाएँ लिए जम्बूकुमार भी आर्य सुधर्मास्वामी की सेवा मे उपस्थित हुए। गुणशीलक उद्यान मे जुड़ी विशाल धर्म-परिषद को उद्बोधन प्रदान करते हुए आर्य सुधर्मास्वामी की भव्य आकृति और प्रभावोत्पादक वाणी से जम्बूकुमार के मन पर प्रथम प्रभाव ही अत्यन्त प्रबलता के साथ हुआ। मन्त्र-मुग्ध मे जम्बूकुमार ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आर्यश्री की चरण-वन्दना की और भाव-विभोर अवस्था मे उन्होने आसन ग्रहण किया।

धर्म-परिषद मे उस समय महत्वपूर्ण एवं गम्भीर चर्चाएँ चल रही थी। आर्य सुधर्मा भगवान महावीर स्वामी के प्रवचनो की मार्मिक व्याख्या कर रहे थे। अपनी सरस, सुबोध और प्रभावोत्पादक शैली के कारण सुधर्मा स्वामी की वाणी मे एक विशिष्ट चमत्कार था। उनके कथन भक्तजनो के मानस को स्पर्श कर उन्हे पवित्र करते जा रहे थे। आर्यश्री अपनी देशना मे जीव-अजीव, पाप-पुण्य, सवर-निर्जरा, मोक्षादि की तात्त्विक विवेचना कर रहे थे। कहना न होगा कि इस प्रवचनामृत का सर्वाधिक प्रभाव इस समय जम्बूकुमार पर हो रहा था। उनकी जो समस्याएँ थी, जो प्रश्न थे—उनके उत्तर और समाधान उन्हे सुधर्मा

स्वामी के प्रवचन से उपलब्ध होने लगे। सब कुछ स्पष्ट होता जा रहा था, एक मार्ग उन्हे आभासित होने लगा, जो उनके लिए अनुसरण के योग्य था। उन्हे अपने लक्ष्य की स्पष्टता भी अनुभव होने लगी और साधनो की प्रतीति भी।

आर्य सुधर्मास्वामी के कथन से परिषद मे यह स्पष्ट होता जा रहा था कि आज का मनुष्य भौतिक एषणाओ के पीछे अनवरत रूप से दौड रहा है। ये अभिलाषाएँ पूर्ण होकर भी न सन्तोप देती है और न वे समाप्त होती है। एक अभिलाषा के पूर्ण होते न होते ही अन्य अनेक अभिलाषाएँ जन्म ले लेती हैं। यह मृग-मरीचिका तृष्णा को ही अधिकाधिक तीव्र करती है—तृप्ति नही देती और मनुष्य का सारा जीवन ही तीव्र असन्तोष का पर्याय वन जाता है। दुख, निराशा, पीडा, सकट, चिन्ता आदि ही मनुष्य के जीवन मे अडिग आसन जमा लेती है। इस परिस्थिति का मूलभूत कारण 'आध्यात्मिकता का अभाव' है—यह भी स्पष्ट होने लगा। मनुष्य आज विस्मरण कर गया है कि आत्मा के इस भवसागर मे अवतरण का उद्देश्य क्या है? उसके कर्तव्याकर्तव्य क्या है? आत्मा को यह मानवयोनि जो मिली है—उसके पीछे छिपी हुई भावना क्या है? और वह लक्ष्य-भ्रष्ट होकर ससार-सागर की विषय-वासना की तरगो मे इधर से उधर भटकता जा रहा है। अज्ञान के प्रभाव से वह त्याज्य को ही ग्राह्य मान वैठा है और पीड़ाजनक पदार्थों को सुख के साधन। अयथार्थ और क्षणिक सुखो के वन्धनो मे ही वह अपनी चिरसुखाकाक्षी आत्मा को बाँधता चला जा रहा है। इसके परिणाम शुभ

कैसे हो सकते है ? यह भी स्पष्ट होने लगा था कि इस जीवन के लिए दीर्घकालीन योजनाएँ बनाने मे ही मन मदा सक्रिय रहता है, मनसूबो का कोई आर-पार ही नही है, किन्तु जीवन की क्षण भगुरता के तथ्य से अपरिचित ऐसे मानव की दशा कितनी दयनीय है। वह बेचारा करुणा का पात्र है। आगामी पल कौन सी परिस्थितियाँ लेकर आने वाला है—कुछ भी निश्चय नही है। ऐसे नश्वर और अनिश्चित जीवन का विवेकपूर्ण उपयोग यही हो सकता है कि जिस महान प्रयोजन को पूरा करने के लिए यह जीवन मिला है, उसी की पूर्ति मे सारी शक्ति प्रयुक्त कर दी जाय। इस मार्ग में आने वाले भटकावो और छलावो से अप्रभावित रहे बिना ऐसा कर पाना सम्भव नही है। अत करणीय और अकरणीय, त्याज्य और ग्राह्य का विवेकपूर्ण निर्णय अपेक्षित है और दृढ़तापूर्वक करणीय और ग्राह्य को ही अपनाना आवश्यक है। जीवन की क्षणभगुरता से निराश नही होना चाहिए। जीवन के इस लक्षण से तो मनुष्य को इस दिशा में प्रेरणा मिलनी चाहिए कि व्यर्थ समय और शक्ति का विनाश करने के स्थान पर उस परम ध्येय की उपलब्धि के लिए तुरन्त प्रयत्नरत हो जाना चाहिए। जो गिनती के पल हमें मिले है, वे इस उपलब्धि के पूर्व ही कही समाप्त न हो जायँ। यदि ऐसा ही घटित हो गया तो यह मानव देह-धारण व्यर्थ हो जायगा। आत्मा को इस अमूल्य अवसर का कोई लाभ नहीं होगा। तुरन्त ही हमे अपने लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयत्न में लग जाना चाहिए—श्वास-प्रश्वास की यह शृंखला न जाने कब खण्डित हो जाय। आर्य सुधर्मास्वामी की इस गम्भीर देशना

से यह भी भली-भाँति स्पष्ट होने लगा था कि वह परम ध्येय क्या है—जिसके लिए आत्मा ने मानवदेह धारण की है—जो किसी अन्य योनि मे प्राप्त नही किया जा सकता, वह परमलक्ष्य है—मोक्ष। यह आत्मा का अन्तिम गन्तव्य है—यही उसकी यात्रा की स्थायी समाप्ति है। इम मोक्ष को प्राप्त करने के लिए जिन प्रयत्नो की अपेक्षा रहती है, वह मानव जीवन मे ही सम्भव है—अन्य जीवन द्वारा नही। यह मोक्ष ही चिरसुख और अनन्त शान्ति की स्थिति है। इस स्थिति की प्राप्ति के पश्चात् आत्मा वन्धन-मुक्त हो जाती है, आवागमन का चक्र स्थगित हो जाता है। यही असमाप्य सुख है, मोक्ष है।

इस अनन्त आनन्द के मार्ग को त्यागकर जो अस्थिर और अवास्तविक सुखो के पीछे भागते है, वे कितने अबोध हैं। ये सुख तो अनन्त दु खो के जनक होते हैं। इनकी भूलभुलैया मे पडकर किसी के लिए सही मार्ग पर आना कठिन रहता है। अत इन विषय-वासनाओ को परे रखना ही श्रेयस्कर है। जो इन बन्धनो से मुक्त होकर वीतरागी हो जाता है, उसी के लिए इस श्रेयस्कर मार्ग पर गतिशील होना सम्भव होता है। इस मानवमात्र के कल्याण के मार्ग का अनुसरण कर मनुष्य स्वकल्याण मे ही समर्थ सिद्ध नही होता, अपितु जगत के लिए भी एक मगलकारी कार्य करता है। वह उस मार्ग से अन्यो को भी परिचित कराता है, उस पर गतिवान होने के लिए उन्हे प्रेरणा दे सकता है और उनके द्वारा चिर सुख-शान्ति की प्राप्ति मे सशक्त सहायक हो सकता है। इससे वढकर मानव-जीवन का और क्या सदुपयोग हो सकता

है । आर्यश्री की इस स्पष्ट विवेचना से जम्बूकुमार का अन्तर जैसे आलोकित हो उठा । ज्ञान के आलोक मे अब उनके लिए तनिक भी घूमिलता शेष नही रही । उनके भावी जीवन का स्वरूप निश्चित हो गया और उनके चिन्तन को अब निश्चित दिशा मिल गयी । वे अपने निश्चय को सुदृढ बनाने के प्रयत्न मे नेत्र निमीलित कर ध्यानमग्न हो गये । उन्होने अब गृह त्यागकर परिव्राजक होने का निश्चय कर लिया था ।

प्रवचन समाप्ति पर परिषद विसर्जित हुई । समस्त भक्त श्रोतागण पूज्य आर्यश्री के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए नमन कर विदा हो गये, किन्तु जम्बूकुमार अब भी आर्यश्री के चरणो मे ध्यानस्थ बैठे थे । इस किशोर को इस स्थिति मे देखकर आर्यश्री तनिक चकित रह गये । सोचने लगे कि यह सब बालक कौन है ! क्या चहता है !! अत्यन्त स्नेह के साथ उन्होने सम्बोधित किया— वत्स ! वत्स !! जम्बूकुमार जैसे निद्रा से सहसा जाग उठे । उन्होने पुन. आर्यश्री के चरणो का स्पर्श करते हुए भावविभोर अवस्था में गद्गद कण्ठ से कहा कि स्वामी ! मैं कृतार्थ हो गया । आपके प्रवचन-प्रकाश मे मैं अब स्पष्टत देख रहा हूँ कि मेरे लिए मात्र साधना का मार्ग ही ग्राह्य है । विगत लम्बे समय से मैं ऊहा-पोह मे था कि अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना चाहिए । मानव जाति के क्लेशो को काटने मे मैं किस प्रकार सहायक हो सकता हूँ ? प्रभु ! आज अब सब कुछ स्पष्ट हो गया । मैं आपके चरणाश्रय की प्राप्ति से धन्य हो गया हूँ । मैं आप ही की कृपा से धर्म के मर्म को भली-भाँति पहचान गया हूँ । ससार की असारता से

परिचित होकर अब मेरे मन मे जागतिक सुखोपभोग के प्रति घोर उपेक्षा का भाव जागरित हो गया है। मैं साधना के मार्ग को अपनाना चाहता हूँ। सासारिक सम्पदाओ, विभूतियो, सुखो के प्रति मेरे मन मे कोई आकर्षण नही है और न ही स्वजन-परिजनो के प्रति अपनत्व का भाव शेष रहा है। स्वामि, मेरे मन मे उदित विरक्ति के भाव को आप कृपापूर्वक आशीर्वाद प्रदान कर पोषित कीजिए। मुझे दीक्षा प्रदान कीजिए। मैं तत्काल ही गृहत्याग करना चाहता हूँ। आपश्री का सम्बल अवश्य ही मुझे सफलता प्रदान करेगा। मुझे दीक्षा प्रदान कीजिए प्रभु ! दीक्षा प्रदान कीजिए !! जम्बूकुमार का मस्तक आर्य सुधर्मास्वामी के चरणो मे नमित हो गया।

अधीर जम्बूकुमार को अपने कोमल स्वर से आर्यश्री ने स्थिरता प्रदान करते हुए कहा कि वत्स ! तुम्हारे मन मे धर्म के प्रति गहन रुचि है—यह जानकर हमे अत्यन्त हर्ष हुआ है। तुम कौन हो ? किसके पुत्र हो ? तनिक अपना परिचय तो दो हमे ! जम्बूकुमार ने विनीत स्वर मे अपने माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करते हुए अपना नाम बताया और मौन हो गये। आर्यश्री भी श्रेष्ठि ऋषभदत्त का नाम सुनकर तनिक गम्भीर हो गये। वे सोचने लगे कि इतने सम्पन्न परिवार मे, वैभव की गोद मे पालित-पोषित होकर जम्बूकुमार के लिए साधुजीवन व्यतीत करना कठिन हो सकता है। उन्होने अपना मौन भग करते हुए जम्बूकुमार को सम्बोधित किया कि वत्स ! तुम कदाचित जिस जीवन को अपनाना चाहते हो, उसकी कठोरता से परिचित नही

हो और इसीलिए इस ओर आकृष्ट हुए हो। सुनो, साधु-जीवन बडा ही कठिन हुआ करता है। कठोर धरती पर शयन करना होता है, प्रकृति के शीतातप के प्रकोप सहन करने होते है, आँधी-पानी के आघातो मे भी अविचलित रहना होता है। तुम कोमल गात्र हो। भला तुमसे यह सब कैसे सम्भव होगा? किन्तु जम्बूकुमार ने दृढ़स्वर मे उत्तर दिया कि प्रभु! मैं इन समस्त कठिनाइयो से परिचित हूँ और साधु-जीवन का निर्णय मैंने भली-भाँति सोच-समझकर ही किया है। जब संकल्प की दृढता होती है तो वाह्य बाधाएँ और कष्ट साधक के लिए अप्रभावी रह जाते है। और प्रभु! मैं निवेदन करूँ कि मेरा संकल्प बडा दृढ है। अनन्त सुखो मे लक्ष्य के समक्ष ये मार्ग के कष्ट तो बड़े ही क्षुद्र है। इन्हे मैं अपने मार्ग मे बाधक नही बनने दूंगा। इन पर सुगमता के माथ मैं विजय प्राप्त कर लूंगा। जम्बूकुमार की दृढ़ता से आर्यश्री बड़े प्रभावित हुए। वे आश्वस्त होकर बोले कि जम्बू! सुनो, यदि ऐसा है, तो तुम वही करो—जिसके लिए तुम्हारा मन निर्देश दे रहा हो। शुभ कार्य मे विलम्ब अनुचित है। किन्तु वत्स जम्बू! क्या तुमने दीक्षा ग्रहण करने के लिए अपने माता-पिता से अनुमति प्राप्त करली है?

जम्बू इस प्रश्न पर मौन रह गये। अभी तो उन्होने माता-पिता के समक्ष अपनी इस अभिलाषा को प्रकट भी नही किया था। उनका मस्तक झुक गया, जिसका आशय आर्यश्री के प्रश्न का नकारात्मक उत्तर था। और आर्य सुधर्मास्वामी ने जम्बूकुमार को अपना शिष्य बनाने से इनकार करते हुए कहा कि पहले तुम्हें

विधिवत् अपने माता-पिता से गृह-त्यागार्थ अनुमति प्राप्त करनी होगी। तभी तुम्हारे लिए दीक्षा ग्रहण करना सम्भव होगा।

जम्बूकुमार के समक्ष अब एक विकट समस्या थी। स्नेहमयी माता, वात्सल्यमय पिता उन्हे तदर्थ अनुमति नही देगे—इसका उन्हे विश्वास था। अपने प्रति अभिभावको के मन मे जो प्रेम था, इसकी गहराई से जम्बूकुमार अनभिज्ञ न थे। किन्तु वे दृढ-प्रतिज्ञ थे—साधु-जीवन ग्रहण करने के लिए, और इस कारण उन्होने निश्चय किया कि किसी प्रकार मुझे उनसे अनुमति भी प्राप्त करनी ही होगी। वे अपने तीव्रगामी रथ पर आरूढ होकर भवन की ओर चल दिये। वे शीघ्र से शीघ्र अपने पिता की सेवा मे उपस्थित हो, उनके समक्ष अपना मन्तव्य प्रकट कर देना चाहते थे। नगर के मार्ग अब तक व्यस्त हो चले थे, आवागमन की अधिकता के कारण रथ की द्रुतगति सम्भव न थी। अत उन्होंने अपने सारथी को अन्य मार्ग पर रथ मोड लेने का निर्देश दिया। यह अन्य मार्ग नगर के बाहर बाहर से होकर जाता था जिसे विशेष रूप से ही काम मे लिया जाता था। सामान्यत इसका उपयोग नही हुआ करता था। इस द्वार का सामरिक महत्व था। इस दुर्गम नगर द्वार पर शत्रु सहार के लिए विकराल भारी अस्त्र-शस्त्र लटके रहते थे। इन शस्त्रो मे शतघ्नी, शिला, कालचक्र आदि भीषण सहारक शस्त्र भी थे। तीव्र वेग के साथ जब जम्बू कुमार का रथ इस नगर द्वार मे प्रविष्ट हुआ, तभी एक दुर्घटना घटी। वह सुदृढ द्वार भरभरा कर ध्वस्त हो गया। शत्रु सहार के लिए व्यवस्थित शस्त्र गिर पडे। होनी को कुछ विचित्र ही

स्वीकार था। जम्बूकुमार का रथ उस पल मे उस पार निकल गया था। एक विशाल, शिला खण्ड अवश्य ही रथ पर आ गिरा। परिणामत. रथ के पृष्ठ भाग को तो कुछ हानि हुई, किन्तु जम्बूकुमार बस बाल-बाल ही बच गये। सारथी बेचारा थर-थर काँप रहा था। अश्व भी इस अनायास प्रसग से अचकचा गया, किन्तु इस दुर्घटना ने जम्बूकुमार के मानस को उद्वेलित कर दिया। जीवन की क्षणभगुरता का साक्षात् दर्शन उन्होने कर लिया। कुछ पल वे गम्भीर और मौन होकर अचल बैठे रहे और फिर उन्होने अन्य मार्ग से रथ को उद्यान की ओर लौटा ले चलने के लिए अपने सारथी को आदेश दिया। सारथी कुछ समझ नही पा रहा था, किन्तु उसने आदेश का पालन किया। अश्व भी अब स्वस्थ होकर पुन द्रुत वेग से दौड़ रहा था। रथ उद्यान के समीप से समीपतर होता चला और उद्यान-द्वार पर रथ के रुकते न रुकते ही जम्बूकुमार धरती पर उतर आये। क्षिप्रता के साथ उन्होने उद्यान मे प्रवेश किया और आर्यश्री की सेवा मे उपस्थित होकर वे करबद्ध मुद्रा मे अचंचल भाव से खडे हो गये। आर्यश्री को आश्चर्य हो रहा था कि जम्बूकुमार इतनी शीघ्रता से अनुमति प्राप्त कर कैसे लौट आया। पूर्व इसके कि आर्यश्री अपना आश्चर्य व्यक्त करते, जम्बूकुमार ही बोल पडे, श्रद्धेयवर! मैं आपसे आज्ञा लेकर अपने माता-पिता से अनुमति प्राप्त करने जा रहा था कि मार्ग मे एक ऐसी अघटनीय घटना हो गयी जिसने मुझे आर्यश्री के इस आदेश का पालन करने के लिए विवश कर दिया कि शुभ कार्य को तुरन्त कर लेना चाहिए, विलम्ब करना उचित नही और मैं

पुन आपकी सेवा मे उपस्थित हो गया। मार्ग मे ही जब मेरा रथ नगर के द्वार से निकल रहा था, अनायास ही द्वार गिर पड़ा। विधि की इच्छानुसार ही मैं सुरक्षित रह गया, अन्यथा मेरी जीवन-लीला समाप्त होने मे कुछ शेष न रहा था। यदि मैं इस दुर्घटना का आखेट हो ही गया होता, तो मैं अपने सकल्प को कैसे पूर्ण कर पाता। अब मैं अपने जीवन का एक क्षण भी नही खोना चाहता और शेष जीवन को सर्वांश मे साधु-जीवन में परिणत कर लेना चाहता हूँ। एक क्षण मौन रहकर जम्बूकुमार पुनः कहने लगे कि प्रभु! मैं ससार की ओर उन्मुख नही होना चाहता। मुझे अपनी शरण मे ले लीजिए। माता-पिता की अनुमति यद्यपि अब तक नही मिली है, किन्तु मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने का अभिलाषी हूँ। इसमे अनुमतिहीनता रचमात्र भी बाधक नही होगी। कृपा कीजिए प्रभु! और मुझे तदर्थ मन्त्र प्रदान कीजिए। यह मेरे नवीन मार्ग पर अपना प्रथम चरण होगा। आर्य सुधर्मास्वामी जम्बूकुमार की धर्म के प्रति अडिग आस्था से अति प्रसन्न हुए। उन्होंने जम्बूकुमार को उनके मनोनुकूल ब्रह्मचर्यव्रत का मन्त्र प्रदान किया। इस प्राथमिक सफलता पर जम्बूकुमार को सन्तोष का अनुभव होने लगा। उन्होंने इसे भावी शुभ सकेत माना और आभारयुक्त हृदय से उन्होने आर्यश्री के चरणों मे नमन किया। तत्पश्चात वे अपने भवन को लौट आये।

६ : गृहत्याग का निश्चय एवं विवाह-स्वीकृति

नगर द्वार पर घटित दुर्घटना का समाचार सुनकर माता धारिणीदेवी और पिता ऋषभदत्त के तो प्राण ही सूख गये। वे अपने नयनो के तारे को सकुशल देख लेने को आतुर हो उठे थे। व्यग्र माता की दशा तो बड़ी ही दयनीय हो गयी थी। पिता भी किंकर्तव्यविमूढ हो गये। इसी समय मुख्य द्वार पर रथ के रुकने की ध्वनि सुनाई दी। अश्व की हिनहिनाहट ने उनके धड़कते हृदयो को तनिक-सा आश्वस्त किया। प्रसन्नता की कान्ति से माता-पिता के नेत्र जगमगा उठे। कान्तिरहित मुख मण्डल पर एक सुख और सन्तोष झलकने लगा। माता ने बढकर अपने प्रिय पुत्र को गले से लगा लिया। पिता ने पुत्र की पीठ को सहलाते हुए प्यार की थपकी दी। दोनो ने पुत्र के समक्ष विगत चिन्ता और विषाद की कथा कही और अब पुत्र को सकुशल देखकर अपने हृदय की अपार प्रसन्नता व्यक्त की। माता ने पुत्र से यो ही प्रश्न कर लिया कि वह गया कहाँ था? काफी देर से उसे घर मे न पाकर वह वैसे ही चिन्तित हो रही थी।

जम्बूकुमार ने गम्भीरता के साथ बताया कि आज वह गुण-शीलक चैत्य मे आर्य सुधर्मास्वामी के दर्शनार्थ गया था। वहाँ आर्यश्री की वन्दना कर उसे अतीव आत्मिक सन्तोष और शान्ति

का अनुभव हुआ। माता-पिता पुत्र की इस धार्मिक प्रवृत्ति से असीम आनन्दित हुए। माता ने कहा कि वत्स ! यह तुमने बड़ा अच्छा किया। सौभाग्यशालियो को ही आर्यश्री के दर्शनो का सुयोग प्राप्त होता है और उनके वचनामृत मे तो तन-मन मे जो अकथनीय शान्ति व्याप्त हो जाती है—उसकी तो महिमा ही कुछ असाधारण है। माँ के स्वर मे स्वर मिलाते हुए जम्बूकुमार ने कहा कि आपकी धारणा सर्वथा यथार्थ है माता ! मैंने भी आर्यश्री के उपदेशो से ऐसा ही चमत्कार अनुभव किया है। मेरे मन मे तो अद्भुत परिवर्तन आगया है। मेरे अन्तरमन मे पिछले लम्बे समय से जो प्रश्न कौंध रहे थे, आज आर्यश्री के प्रवचन मे उन सबका उचित समाधान मिल गया। जीवन और जगत् को, सुख और दु ख को, धर्म और उसके मर्म को, मानव जीवन की महत्ता और उसके परम लक्ष्य को आज मैं उनके यथार्थ रूप में भली-भाँति पहचान गया हूँ। मुझे आप लोगो की अनुमति लेनी थी कि तुरन्त आर्य सुधर्मास्वामी के चरणो मे बैठकर दीक्षा ग्रहण कर लूँ, इसी कारण मे शीघ्रता से आपकी सेवा मे उपस्थित हो रहा था कि नगर द्वार पर वह दुर्घटना हो गयी। पिताजी, इस दुर्घटना ने मेरे नेत्र खोल दिये हैं। मनुष्य के जीवन का कुछ भी भरोसा नही है। वह कभी भी कराल काल का आहार बन सकता है। अत मानव जीवन के उच्चतम लक्ष्य—'मोक्ष प्राप्ति' के प्रयत्न के किसी को भी विलम्ब नही करना चाहिए। यही सोचकर मैं पुन. आर्यश्री की सेवा मे उपस्थित हो गया और आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत का मन्त्र लेकर आया हूँ। अब हे माता

और पूज्य पिताजी ! आप कृपा कर मुझे प्रव्रजित होने के लिए अनुमति प्रदान कर दीजिए। इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है। सासारिक जीवन को मैं दु खमय मानता हूँ, उसकी सुखमयता को मैं प्रवचना मानता हूँ। ऐसी स्थिति मे अब मैं आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहता हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि मै अपने मनोरथ मे सफल होऊँ और अन्य दु खी प्राणियो को भी दु ख से मुक्त करने मे सहायक हो सकूँ।

जम्बूकुमार तो मौन हो गये। माता-पिता के कोमल स्नेहपूर्ण हृदयो पर भी एक तीव्र आघात हुआ था—वे भी अवाक् रह गये। क्या उत्तर देते ? माता के स्वप्नो की फुलवारी पर तो पाला पड गया। उसे सर्वत्र शून्य ही शून्य अनुभव होने लगा था। पिता की चिन्ता की भी कोई सीमा नही रही। अकस्मात ही यह नवीन परिस्थिति उठ खडी हुई थी। धारिणीदेवी और श्रेष्ठि ऋषभदत्त—दोनो के नेत्र छलछला आये। अपनी अस्थिरता पर अंकुश लगाते हुए प्रयत्नपूर्वक श्रेष्ठि ने अपने आपको नियन्त्रित किया और पुत्र से कहने लगा कि जम्बूकुमार ! तुम आर्यश्री के दर्शनार्थ गये, उनके वचनामृत का पान किया—यह तो परम हर्ष का विषय है। हमारे वश मे जिन-शासन की बडी दृढ परम्परा रही है। हमारे पूर्वजो मे सदा ही धर्म के प्रति अगाध श्रद्धाभाव रहा है, किन्तु उनमे से किसी ने भी प्रव्रज्या ग्रहण नही की। हम दोनो भी धर्म के प्रति अगाध रुचि रखते हैं; तन-मन-धन से धर्म की सेवा किया करते हैं, किन्तु हमारे मन मे भी प्रव्रज्या का विचार कभी अकुरित नही हुआ। ऐसी स्थिति मे तुम्हारे द्वारा

'साधु-जीवन' का सकल्प ग्रहण किया जाना हमारे वश मे अनागामागत होगा। फिर हे जम्बूकुमार ! तुम पर तो हम दोनो की कितनी-कितनी आशाएं अटकी हुई है। तुम इस कुल मे एक मात्र पुत्र हो। तुम ही हमारी वश-वल्लरी को प्रसारित करोगे। तुम्हारे मुख मे विरक्ति की बात सुनकर हमारी समस्त आशाएँ ध्वस्त होने लगी हैं—तुम इस विचार को त्याग दो और उपलब्ध विराट वैभव का उपभोग करते हुए सानन्द जीवन यापन करो। तुम्हारे अभाव मे इस अतुलित सम्पदा का अर्थ ही [विषय] रह जायगा। हमे निराश मत करो और प्रव्रजित होने का भाव भी मन मे मत आने दो। अभी तुम्हारी आयु की क्या है ? इस अल्पायु मे तुमने ऐसी कौन सी विशिष्ट उपलब्धि करली है कि तुम प्रव्रजित होने की पात्रता का अनुभव करने लगे।

पिता को इस प्रकार अधीर देखकर जम्बूकुमार का हृदय भर आया और कण्ठ अवरुद्ध हो गया। सप्रयास उन्होंने आत्म-नियन्त्रण किया और गम्भीरता के साथ निवेदन करने लगे कि तात ! कुछ पात्रताएँ ऐसी होती हैं जिनका किसी निश्चित आयु से कोई सम्बन्ध नही होता। कुछ लोग ऐसे होते है जो ससार-सागर के कुछ ही थपेडे खाकर सचेत हो जाते है, अपने कर्तव्य के प्रति सजग हो जाते हैं। इसके विपरीत अनेक लोग दीर्घ समय तक, यहाँ तक कि मृत्युपर्यंत भी सचेत नही हो पाते और अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ ही खो देते हैं। किन्ही के लिए महान अनुकरणीय आदर्श भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं, उन पर उपदेशो का कोई प्रभाव नही होता और किसी की आत्मा रचमात्र सकेत से

ही जागरित हो जाती है, वोध प्राप्त कर अनुकूल आचरण के लिए कटिबद्ध हो जाती है। पूज्यवर ! मेरी स्थिति कुछ ऐसी ही है। आर्य सुधर्मास्वामी के प्रथम प्रवचन से ही मेरे सुसंस्कार सजग हो गये है और मेरा भावी मार्ग निश्चित हो गया है।

जम्बूकुमार कुछ क्षण मौन रहकर पुनः मुखरित हुए। उन्होने अपनी धारणा की पुष्टि के लिए एक प्रसग सुनाया—किसी समय एक नगर मे एक गणिका रहा करती थी। उसकी रूपश्री की ख्याति दूर-दूर के प्रदेशो तक व्याप्त थी। सगीत-नृत्यादि कलाओ मे भी वह अद्वितीय थी। हजारो-लाखो सम्पन्न रसिकगण उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने को तत्पर रहा करते थे। दूर-दूर से ऐसे लोग उसके नृत्यागार मे पहुँचा करते थे और अतुल धनराशि अर्पित कर स्वय को धन्य समझा करते थे। उसके प्रशसको की प्रायः प्रतिदिन भीड़ लगी रहती-थी। अनेक श्रेष्ठिपुत्र, राजपुत्र आदि भी उसके प्रशंसक थे और उसकी सभा की शोभा वढाया करते थे। गणिका को समर्पित करने के उद्देश्य से लाया गया धन जब समाप्त हो जाता तो वे अपने निवास-स्थानो के लिए प्रस्थान करते। गणिका अपार-अपार वैभव की स्वामिनी हो गयी थी। उसके यहाँ की एक विशिष्ट परम्परा यह थी कि जब रसिक जन उसके यहाँ से विदा होते, तो वह स्मृति-चिन्ह के रूप अपना कोई आभूषण उन्हे अवश्य भेट करती थी। इसके लिए भी प्रथा यह थी कि विदा होने वाले से ही वह पूछा करती थी कि कौन-सा आभूषण वे ले जाना चाहते है और किसी की भी याचना को उसने कभी

अस्वीकार नही किया। कोई मूल्यवान कगन माग लेता तो कोई रत्न-जटित स्वर्णहार। एक दिन ऐसे ही अवसर पर जब एक श्रेष्ठिपुत्र से गणिका ने आग्रह किया कि वह अपने साथ उसका कोई स्मृति चिह्न ले जाय और उससे उसकी रुचि का आभूषण बताने को कहा, तो श्रेष्ठिपुत्र मौन हो गया। गणिका ने पुन आग्रह किया कि स्वामिन्! सकोच मत कीजिए, मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करने मे कोई कृपणता नही करूँगी। आप बेहिचक कहिए। अबकी बार श्रेष्ठिपुत्र ने कहा कि रानी, आपका रत्न-जटित यह स्वर्ण आसन कितना मनोहारी है! इसका मूल्य तो मैं आँक ही नही सकता। मैं आपसे इसकी याचना नही करूँगा। मुझे तो इस आसन के समीप रखे उस 'पादपीठ' की कामना है। कृपाकर वही मुझे दे दीजिए—बडा आभारी रहूँगा। वैसे आपसे कोई प्रतिदान स्वीकार करना हमे शोभा नही देता, किन्तु आपके सुकोमल मन का अनुरोध भी टाला कैसे जा सकता है। अत जब आप कुछ देना ही चाहती है, तो मैं उस पादपीठ को ले लूँगा जिस पर आपके सुकोमल चरण विश्राम किया करते हैं। आपके चरणो का निरन्तर स्पर्श करते रहने वाला यह पादपीठ मेरे लिए श्रेष्ठ स्मारक रहेगा, आपके चचल चरणो की नृत्य-कला का ही तो पुजारी हूँ मैं। गणिका समझ नही पा रही थी कि इस श्रेष्ठिपुत्र ने अन्य कोई मूल्यवान आभूषण क्यो नही माँगा और इस तुच्छ सी वस्तु का आग्रह क्यो कर रहा है। वह चाहती थी की इसे भी अन्य रसिको की भाँति ही कोई उत्तम वस्तु भेंट की जाय। अत. उसने कहा कि आप कोई अन्य बहुमूल्य वस्तु

लीजिए न ! इस क्षुद्र से पादपीठ मे क्या धरा है। इसे देते हुए तो स्वयं मुझे ही सकोच का अनुभव होता है। किन्तु श्रेष्ठिपुत्र अपनी उसी याचना पर दृढ यहा। अन्तत: गणिका ने वह पादपीठ ही उसे देकर विदा किया।

वास्तव मे वह श्रेष्ठिपुत्र मूल्यवान धातुओ और हीरे जवाहरात का व्यवसायी था। इन वस्तुओ का वह कुशल पारखी भी था। उसने उस पादपीठ को प्रथम दृष्टि मे ही मूल्याकित कर लिया था कि वह पचरत्नो से जटित है और गणिका जिसे साधारण वस्तु मान रही है वह तो ससार मे एक अनुपलब्ध निधि है। ये रत्न दुर्लभ है। श्रेष्ठिपुत्र ने उन रत्नो का मनमाना मूल्य प्राप्त कर लिया और आपने व्यवसाय को ही नही अपनी प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को भी खूब उन्नत कर लिया।

यह प्रसग सुनाकर जम्बूकुमार ने इसके पीछे छिपे अपने मूल मन्तव्य की भी व्याख्या की। उन्होने कहा कि हे तात ! जिस प्रकार उस पारखी श्रेष्ठिपुत्र ने उस दुर्लभ वस्तु को गणिका से प्राप्त कर अपने शेष जीवन के लिए सुख और उन्नति का प्रबन्ध कर लिया था, उसी प्रकार मैने भी आर्य सुधर्मास्वामी से जीवन और जगत् के मर्म को समझ लिया है और अब मै अपने जीवन को परम लक्ष्य की प्राप्ति मे लगा देने के लिए सकल्पबद्ध हूँ। मैं अक्षय आनन्द और परमपद प्राप्त करने की साध को पूर्ण करना चाहता हूँ। इसके लिए साधना आवश्यक है। साधना के लिए अनिवार्य आवश्यकता है विरक्ति की। अत. कृपापूर्वक आप

मुझे गृहत्याग कर परिव्राजक बनने की अनुमति प्रदान कीजिए। आपके शुभाशीर्वादो से मेरा मार्ग सुगम और सफलता सर्व निश्चित् है। जम्बूकुमार इतना कहकर मौन हो गये और अपने माता-पिता की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। वे कभी माता की ओर निहारते तो कभी पिता के मुख मण्डल पर उनकी दृष्टि केन्द्रित हो जाती।

पिता ऋषभदत्त को अपने पुत्र के इतने सज्ञान हो जाने के कारण सहज गौरव का अनुभव हो रहा था, किन्तु अत्यधिक खेद का अनुभव उन्हे इस परिस्थिति के कारण हो रहा था कि बार-बार पुत्र साधु जीवन ग्रहण कर लेने की अनुमति के लिए प्रबल आग्रह कर रहा था। पुत्र के तर्कों को काटने की स्थिति मे भी वह नही था और वह पुत्र को प्रव्रजित हो जाने की अनुमति देने का साहस भी नही कर पा रहा था। ममता का बन्धन और कुल-परम्परा के निरन्तरण की उत्कट अभिलाषा उसे ऐसा नही करने दे रही थी। पिता ने घोर निराशा की स्थिति मे भी एक बार और प्रयत्न करते हुए प्रबोधन के स्वर मे जम्बूकुमार से अत्यन्त कोमलता के साथ कहा कि प्रियपुत्र ! हमारे मनोभावो को भी तुम्हे दृष्टिगत रखना चाहिए। हमे बड़ी प्रसन्नता है कि मानव-जीवन के उच्चतम लक्ष्य को पहचान कर, उसकी प्राप्ति के लिए तुम सचेष्ट हो। ऐसा किसी-किसी व्यक्ति के लिए ही सम्भव हो पाता है। हमे तुम पर गर्व है, किन्तु हमारा तुमसे अनुरोध है कि गृहत्याग का अपना विचार इस बार तुम स्थगित रखो। आर्यश्री विभिन्न जनपदो मे धर्म प्रचार करते हुए आगामी बार

जब राजगृह पधारे, तब तुम दीक्षा प्राप्त कर लेना। उस समय तुम्हे हमारे कारण कोई व्यवधान नही रहेगा। कुछ समय हमे और पुत्र सुख का उपभोग कर लेने दो। पिता का आग्रह—आत्म-कल्याण का सकल्प ! किसे करें और किसकी उपेक्षा करे। जम्बूकुमार के लिए यह कठोर परीक्षा की घडी थी। उनके मन मे अन्तर्द्वन्द्व मच गया। किन्तु वे शीघ्र ही द्वन्द्व पर नियन्त्रण कर निर्णायिक परिस्थिति मे आ गये। उन्होंने बडी ही दृढता के साथ साम्बन्धिक मोह की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त की। उनका पक्ष भारी होता चला गया। उन्होंने विनीत वाणी मे निवेदन किया कि तात ! आप मेरे पूज्य है, जनक है—अत आपके आदेशो का उल्लघन मेरे लिए सम्भव नही है तथापि आपसे पुन आग्रह करता हूँ कि मेरी प्रार्थना पर ध्यानपूर्वक विचार कीजिए। यह सत्य ही है कि अल्पायु मे ही मेरे मन मे विरक्ति का भाव अकुरित हो गया है, किन्तु मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा सकल्प महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए है और मेरे कल्याण मे आपको प्रसन्नता ही होगी। उस महान लक्ष्य के लिए दीर्घ साधना अपेक्षित रहती है। मैं जितना ही शीघ्र इस साधना मे लगूंगा उतना ही शुभ है, सफलता उतनी ही अधिक सुरक्षित रहेगी।

फिर इस अनिश्चयपूर्ण जीवन का ठिकाना ही क्या है ? जो शुभ है, उसे अविलम्ब आरम्भ कर देने मे ही औचित्य है। स्थगन की प्रवृत्ति तो उस शुभ के प्रति निष्क्रियता की प्रवृत्ति होगी। जिसे हम आज आरम्भ न करे, क्या भरोसा कि उसे कल आरम्भ करने की स्थिति मे हम रहेगे ही। अतः मेरा अनुरोध स्वीकार

कर लीजिए और हर्ष के साथ मुझे अप ो अनुमति प्रदान कर दीजिए। निराश ऋषभदत्त कव तक अपने पुत्र को औचित्यपूर्ण उक्तियो को नकारता रहता ! वह निरुत्तर होकर दु ख सागर मे डूबने-उतराने लगा। उमे सर्वत्र निराशा का घोरतिमिर ही दृष्टिगत होने लगा। उसकी वाणी कुण्ठित होने लगी और मन छटपटाने लगा। उमके भीतर की शोककुलता मुख पर विपन्नता के रूप मे प्रदर्शित होने लगी।

धारिणीदेवी अपने एक मात्र पुत्र से अतिशय स्नेह रखती थी। वह सहज ही मे जम्बूकुमार को प्रव्रजित हो जाने के लिए कैसे अनुमति दे देती ! उसका तो इस कल्पना से ही रोम-रोम काँप उठा था। उसने भी जम्बूकुमार को समझाकर अपना विचार त्याग देने के लिए प्रेरणा देने का प्रयत्न किया। अवरुद्ध कण्ठ से सर्वप्रथम उसने आपने पुत्र को सम्वोधित कर कहा कि प्यारे वेटे ! तुम्हे यह अद्‌भुत विचार क्योकर आ गया। इस विचार को हम लोगो के लिए त्याग दो। तुम कदाचित् नही जानते कि तुम्हारा यह निश्चय हमारे हृदयो पर आरी चला रहा है। तुम इतने कठोर मत वनो वेटे ! तुम्हारे लिए यह मार्ग नही वना है। देखो तुम्हारे पिताजी ने विपुल धन-सम्पदा का, अपार वैभव का सग्रह तुम्हारे लिए किया है। हम तुम्हारा सुखी जीवन देखने के अभिलाषी हैं। इन सुख-सुविधाओ का उपभोग करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है। इस अतुल ऐश्वर्य के तुम्ही तो स्वामी होने वाले हो। इसका मनोनुकूल उपयोग-उपभोग करो और अपने जीवन को आनन्दपूर्ण वनाओ। तुम ही यदि गृह

त्यागकर चले गये तो वत्स ! फिर इस सारी सम्पत्ति का अर्थ ही क्या रह जायगा। फिर तो हम लोगो के लिए न तो इस स्वर्ण-राशि मे कोई आभा रह जायगी, न रत्नो मे कोई दीप्ति—न मुद्राओ मे कोई खनक शेष बचेगी और न ही इस प्रासाद मे कोई आकर्षण। बेटे ! हमारा आग्रह स्वीकार कर लो और आपने इस निश्चय को छोड़ दो।

माँ ! तुम कदाचित अपने विचार से सत्य ही कह रही होगी, किन्तु यह धन-दौलत सुख-ऐश्वर्यादि को देखने की वाह्य दृष्टि ही है जो मात्र प्रवचना है, छद्म है। धन का अस्तित्व कही भी स्थायी रूप से नही रहा। आज का धनाढ्य कल दरिद्र हो जाता है और रक से राजा हो जाने मे भी विशेष समय नही लगता। माया तो तरुछाया सी चचल होती है। इसके लोभ मे पड़कर मैं उस परमपद के अवसर को कैसे त्याग दूँ जो एक बार उपलब्ध होकर फिर कभी छिनता नही। सम्पदा की वृद्धि की कामना का कभी अन्त नही होता और उस उपलब्धि के पश्चात् तो कोई कामना ही शेष नही रहती। आत्मा अनन्त सुख और अक्षुण्ण शान्ति के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो जाती है, और हे माता ! इस धन से सुलभ होने वाले सुख भी वास्तविक सुख कहाँ होते हैं। ये जागतिक और भौतिक सुख तो सुख की छाया है। जिन्हे आप सुख कहती हैं, उनके वास्तविक स्वरूप को मै पहचान गया हूँ। ये सुख घोर और अनन्त दु खो के जनक होते है—ये सुख कपटपूर्वक अपने भीतर अपार दु.खो को छिपाये रखते हैं। सुखो का यह आवरण तो तुरन्त ही छिन्न हो जाता है और तब दु ख के पंजो मे फंसकर

मनुष्य छटपटाता रहता है। दीपक की लौ की ओर लपक कर शलभ की जो स्थिति होती है और बीन की रागिनी से आनन्दित तथा मुग्ध होकर मृगी की जो स्थिति होती है—उससे तो आप परिचित ही है। वैसी ही दारुण स्थिति उन मनुष्यो की होती है जो सुखो के आकर्षक आवरण से लुब्ध होकर उन्हे प्राप्त करने के लोलुप बने रहते है। मछली उन्मुक्त जल-विहार की सानन्द घड़ियो मे जब सरस खाद्य पदार्थ की ओर आकृष्ट होती है और उस रस-सुख का लोभ जब मछली को खाद्य की ओर लपकाता है, तब का परिणाम भी आप जानती ही है। माँ ! मछली बेचारी स्वाद के स्थान पर विपाद ही प्राप्त करती है। उस खाद्य के भीतर छिपा लोह-कटक उसके जबड़े मे फँस जाता है और वह कल्पित खाद्य मछली के लिए मृत्यु का कारण बन जाता है। ऐसे असार, अवास्तविक और दु खो के जनक इन सासारिक सुखो की ओर मेरे मन मे कोई आकर्षण नही रहा जो शीघ्र ही नष्ट भी हो जाते है। मैं तो अनन्त असमाप्य सुख का, निर्वाण-सुख का अभिलापी हूँ। मुझे असली सुख के मार्ग से भटकाकर ससार की भूलभुलैया मे क्यो डालना चाहती हैं ? माँ ! आप तो अपने पुत्र को सुखी देखना चाहती है—उसका सुख गृहत्याग मे ही निहित है। मुझे इस मार्ग से रोकिये नही, आशीर्वाद प्रदान कीजिए कि उस अनन्त सुख के मार्ग पर तीव्रगति से अग्रसर हो सकूँ।

लेकिन बेटे ! अभी तुम्हारी आयु प्रव्रज्या ग्रहण करने की नही है। माँ ने अपने प्रयत्न को और आगे बढाया और कहा कि अभी तो तुम्हे गृहस्थी बसानी है, पारिवारिक जीवन का आनन्द लेना

है। तुम्हारी सुन्दर वधुओ की झाझरों से यह प्रासाद गुजरित हो जायगा। उनके मधुर-मधुर वचनो से हम सब के कानो मे मिश्री घुल जायगी और हमारा आँगन बाल-किलकारियो से भर उठेगा। यह भी तो जीवन का एक आनन्द है। तुम हमे इस आनन्द से क्यो वचित कर देना चाहते हो। मैं एक नारी हूँ, माँ हूँ और इस नाते मेरी जो कामनाएँ है—उनका भी तो कोई महत्व है। उसे यो झुठला कर मत जाओ बेटे! हमारी बात मान लो।

माँ के इस आग्रह से जम्बूकुमार और अधिक गम्भीर हो गये। इसका कारण यही था कि आग्रह माँ के द्वारा किया जा रहा था जिसके प्रति उनके मन मे गहन श्रद्धा और आदर का अटूट भाव था। जम्बूकुमार के लिए यह भाव एक पल के लिए विचलन का कारण बना, किन्तु वे तुरन्त ही पुन दृढ हो गये। माता के इस नवीन आग्रह को उत्तरित करते हुए वे कहने लगे कि माँ! धन-ऐश्वर्य सुखादि की भाँति ही स्वजन-परिजनो के ये नाते-रिश्ते है। केवल सासारिक सुख-दु.खो के ही साझीदार ये हो सकते है। वास्तविक चिर-सुखो की भोक्ता तो अकेली वही आत्मा होती है, जो इसकी पात्रता प्राप्त कर लेती है। उससे स्वजनो को वह उसमे साझीदार नही बना पाती। इसी प्रकार कर्मजनित दु खो को भी अकेले ही भोगना पड़ता है। फिर यह स्वजन-परिजनों का मेला भी तो सदा-सदा नही बना रहता। जब जिसकी बारी आती है, सदा के लिए सब को छोड़कर वह चल देता है। किसी की अभिलाषा का कोई प्रभाव उस परिस्थिति पर नही होता। तो फिर यदि मैं स्वेच्छा से ही सम्बन्धो का परिहार कर रहा हूँ

और वह भी एक महान लक्ष्य के लिए, तो उसमे किसी के लिए शोक और खिन्नता का कोई कारण नही चाहिए। एक दिन तो विवश होकर विछुडना ही पडेगा। अत आज ही मैं उस श्रेयस्कर पथ का पथिक क्यो न हो जाऊँ, जिसका लक्ष्य मानव जीवन की चरम सफलता का प्रतीक है।

माता चुपचाप जम्बूकुमार की युक्तियुक्त वाते सुनती जा रही थी। जम्बूकुमार के कथन मे असत्य या अनर्गल तत्त्व को न पाकर उसका मन हताश होता जा रहा था। वह पुत्र की किसी भी बात मे तो अनौचित्य नही देख रही थी कि जिसका खण्डन कर वह उसे अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करती तथापि उसने साहस नही छोड़ा। जब लोभ के जाल मे वह जम्बूकुमार को ग्रस्त न कर सकी तो अब उसने एक अन्य युक्ति सोची। धारिणीदेवी ने कहा कि वेटें ! साधु-जीवन की कठिनाइयो से तुम परिचित नही हो। अत. तुम ऐसा साहस कर रहे है। किन्तु तुम्हारा यह दुस्साहस ही होगा। साधक जीवन कठोर और कष्टपूर्ण होता है। वेटे ! वन-वन व गाँव-गाँव भटकना, वृक्षो के तले कठोर चट्टानो पर सोना, कई-कई दिन तक निराहर रहना—साधको के लिए स्वाभाविक परिस्थितियाँ हैं और जम्बू ! तुम जैसे वैभव और सुखो के पलने में बडे होने वाले सुकोमल बालक के लिए यह सव क्या सम्भव होगा ? तुम प्राकृतिक कष्टो को भी तो नही झेल सकते। क्या तुम्हारा यह नवनीत कलेवर मेघो की वाण्वत् धारो को सह लेगा ? क्या ओलो की कठिन मार को तुम वरदाश्त कर सकोगे ? प्यारे वेटे ! जव घने जगलो मे प्रचण्ड आँधियाँ शोर मचाती हुई

दौड़ेगी तो तुम्हारा कोमल हृदय भय से काँप-काँप जायगा। फिर वनो मे सिंह, बाघ, बनैले रीछ, भयकर विषधर नाना प्रकार के हिंसक जीव रहते हैं। रात्रि में जब इनकी घोर गर्जनाएँ और गुर्राहटे होगी तब तुम अपने मन को कैसे अविचलित रखोगे। नही, यह सब तुम्हारे बस की बात नही है। वन में कौन तुम्हारी रक्षा करेगा। कौन तुम्हारा सहायक होगा। अत अपनी हठ छोड़ दो जम्बू ! न तुम्हारे अनुकूल यह जीवन है और न इस प्रकार के जीवन के उपयुक्त तुम हो। तुम्हारे भाग्य मे तो यह सुखी जीवन बदा है—इसका आनन्द लो।

जम्बूकुमार ने साधक-जीवन की कठोरताओ को पहली बार ही अपनी माँ से सुना हो—ऐसी बात नही थी। उन्होने तो स्वय में इन कठिनाइयो को समता से सहने की शक्ति पनपा ली थी। अत माता का यह प्रयत्न भी विफल हो गया। जम्बूकुमार न भयभीत हुए, न आतकित। अपनी सहज-शान्त मुद्रा में ही उन्होंने उत्तर दिया कि कठिनाइयाँ और भय भी माँ ! मन की दुर्बलता की अवस्था में ही हावी होता है। जब मन सबल और निर्भीक हो जाय तो बाहर की कोई भी परिस्थिति मनुष्य को विचलित नही कर सकती, उसके मार्ग मे बाधक नही हो सकती। माँ ! तुमने मेरे शरीर की कोमलता को ही देखा है, उसके भीतर के निर्भीक मन से तुम्हारा परिचय नही है। इसी कारण तुम्हे मेरी सघर्षशीलता और साहस-शक्ति का सत्य-सत्य भान नही है। माँ ! विश्वास करो मैं अविराम गति से अपने मार्ग पर अग्रसर होता रहूँगा और कोई कष्ट मेरे लिए कष्ट नही रह जायगा, कोई भय मुझे भीरु नही

बना पायगा, कोई बाधा मेरे लिए अवरोध न बन पायगी । आत्म-विश्वास के साथ मैं सतत रूप से साधना मार्ग मे आगे-से-आगे बढता चला जाऊंगा और एक दिन लक्ष्य प्राप्ति में भी अवश्य ही सफल हो जाऊँगा । आवश्यकता आप लोगो के आशीर्वादो की ही है ।

माता धारिणीदेवी का उत्साह बुझता चला जा रहा था। ज्यो-ज्यो वह जम्बूकुमार को अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करती जा रही थी, त्यो हीं त्यो उलटा जम्बूकुमार का ही पलड़ा भारी होता जा रहा था । अन्तत. उसने एक और अस्त्र का प्रयोग किया । निराशा में बुझे शब्दो के साथ उसने अत्यन्त गम्भीरता के साथ कहा कि बेटा ! तुम साधु-जीवन की समस्त योग्यताएँ रखते हो—यह मान भी लिया जाय, तब भी तुम्हारे प्रव्रजित हो जाने के कारण तुम्हारे पिता की प्रतिष्ठा को जो हानि होगी, लोक मे उनका जो अपयश होगा—क्या तुम्हे उसकी तनिक भी चिन्ता नही है । सुपुत्र होने के नाते हम तुम से ऐसी ही आशा रखते है कि अपने किसी कार्य से तुम हमारी निन्दा नहीं होने दोगे । इस नवीन युक्ति को जम्बूकुमार समझ नही पा रहे थे कि कौन सी निन्दा, अपयश का क्या कारण और इनसे मेरे दीक्षा ग्रहण करने के कार्य का क्या सम्बन्ध ! वे आवाक् रह गये । कुछ क्षणोपरान्त उन्होने कहा माता ! ऐसा कदापि नही होगा कि मेरे किसी कर्म से पिताजी के मान-सम्मान को ठेस पहुँचे । ऐसा मैं किसी भी परिस्थिति मे नही होने दूंगा किन्तु मैं समझ नही पा रहा हूँ कि ...। जम्बूकुमार का वाक्य अपूर्ण रह गया और बीच ही मे धारिणीदेवी बोल उठी कि मैं समझाती हूँ, तुम्हे सारी बाते । सुनो,

आठ श्रेष्ठि-कन्याओ के साथ तुम्हारे पिताजी ने तुम्हारा विवाह निश्चित किया है, उन्होने अपनी ओर से स्वीकृति भी दे दी है। कन्या पक्ष विवाह की तैयारियाँ कर रहे है। ऐसी स्थिति मे यदि तुमने दीक्षा ग्रहण कर ली तो विवाह कैसे सम्भव होगा। और ऐसी अवस्था मे क्या तुम्हारे पिताजी का अपयश नही होगा कि उन्होंने अपने वचन का पालन नही किया। क्या उनकी धर्म-प्रियता, उनकी सम्पन्नता, उनके सदाचार, उनके सद्व्यवहारादि पर यह एक घटना ही पानी नही फेर देगी। फिर अपमानित जीवन ही हमारे लिए शेष रह जायगा। मैं तो उसकी कल्पना मात्र से सिहर जाती हूँ। तुम्हारे पिताजी को भी.... ....। नही....नही....। नही माँ ऐसा नही होगा। अबकी बार जम्बूकुमार आन्तरिक मनोभावो के आवेश मे बीच मे बोल उठे। वे कहने लगे कि माँ! यदि मेरा विवाह टल जाने मात्र से ऐसी भयकर स्थिति उत्पन्न हो सकती है, तो मैं उसे कदापि उत्पन्न नही होने दूंगा। आप मेरे लिए प्रथमत पूजनीय है, मैं आपके लिए किसी भी प्रकार अहित का निमित्त नही बनूंगा। तीव्र मनोवेगो और अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनके भाल पर स्वेद कण झलकने लगे। उनके मन मे दो विरोधी विचारो के मध्य सघर्ष छिड गया था। एक पक्ष था उनके सकल्प का, दूसरा पक्ष था विवाह-बन्धन मे बंधकर माता-पिता की प्रसन्नता ही नही, उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा करने का। इन दोनो परस्पर विरोधी पक्षो का एक साथ निर्वाह असम्भव था। दोनो मे से किसे त्याज्य समझे, किसे अपनावे! एक का त्याग मानव देह धारण के इस सुयोग को ही निष्फल कर

देगा; दूसरे का त्याग यह सुफल तो देगा, किन्तु माता-पिता के प्रति अहितकारी बनाकर उन्हे 'कुपुत्र' का विशेषण देगा। दोनो ही परिणाम उनके लिए अवाछनीय थे। ऐसी स्थिति मे अन्तर्द्वन्द्व का होना स्वाभाविक ही था। विवेकशील जम्बूकुमार ने शीघ्र ही इस द्वन्द्व की स्थिति को समाप्त कर दिया और एक ऐसे निर्णय पर पहुँचे कि जिससे दोनो पक्षो का समानान्तर रूप से रक्षण सम्भव हो गया। उन्होने स्वय को सयत करते हुए निवेदन किया कि मैं पिताजी और अपने वश के गौरव को ध्वस्त नही होने दूंगा माँ! आपकी और पिताजी की आज्ञा मेरे लिए सदा ही शिरोधार्य रही है और बड़े से बड़ा लक्ष्य मुझे अपने इस कर्तव्य से च्युत नही कर सकता। आपकी अभिलाषा को मैं पूर्ण करने के लिए तत्पर हूँ। पिताजी के वचन की रक्षा अवश्य होगी, किन्तु मेरा भी एक अनुरोध है। मैं विवाह कर लूंगा, किन्तु उसके पश्चात् अपना मार्ग निर्णीत करने की मुझे स्वच्छन्दता होनी चाहिए। विवाह के तुरन्त पश्चात् मैं दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। फिर कोई प्रतिवन्ध नही हो। विवाह की इस प्राथमिक स्वीकृति से ही माता-पिता के कुम्हलाए हुए हृदय-सरोज पुन खिल उठे। हर्ष की लहरे उनके मुखमण्डल पर मचलने लगी और नेत्रो मे आनन्दाश्रु छलकने लगे। माता धारिणीदेवी ने जम्बूकुमार के अनुरोध को यथावत् स्वीकार कर लिया। वह सोचने लगी थी कि जब आठ-आठ परम सुन्दरियाँ वधू रूप मे घर मे आ जाएँगी त जम्बूकुमार का मन क्या उनकी रूपछटा से अप्रभावित रह सकेगा वे अपने कमनीय वचनो से ऐसा जादू करेगी कि जम्बूकुमार स्व

ही अपने निश्चय को विस्मृत कर देगा। उन कटाक्षबाणो से जम्बू का हृदय ऐसा आहत होगा, प्रेम की मधुर पीर ऐसी जागरित होगी कि यह दीक्षा का नाम भी भूल जायगा। उसके मन मे सन्तोष था कि चलो, पुत्र ने विवाह कर लेना तो स्वीकार कर लिया है। उसके पश्चात् तो इसकी पत्नियो की भूमिका ही रह जाती है, कि वे इसे गृह-त्याग न करने दे। कन्याएँ सुशील और कुशल हैं। वे अपनी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक कर लेगी। अब माता धारिणीदेवी और पिता ऋषभदत्त के मन से चिन्ता का बोझ उतर गया था। वे एक प्रफुल्लता का अनुभव करने लगे।

□

७ : विवाह एवं पत्नियों को प्रतिबोध

ऋषभदत्त का सारा भवन अब सजने लगा था। विवाह की निश्चित तिथि समीप आने लगी थी। आठो कन्याओ के पिताओ को यह शुभसन्देश भिजवा दिया गया था। कन्या-पक्षो मे भी मंगल-गान होने लगे, विवाह की तैयारियाँ होने लगी और सर्वत्र उत्साह बिखरने लगा। स्वय कन्याओ की मानसिक उत्फुल्लता का तो कहना ही क्या! कभी वे सलज्ज हो उठती, तो कभी प्रियतम से मिलन का अवसर समीप पाकर उमगित हो उठती। जम्बूकुमार के मन की गति बडी अद्भुत थी। वे शान्ति का अनुभव नही कर पा रहे थे। वे सोचते कि ऐसे विवाह का क्या औचित्य है, जिसके तुरन्त पश्चात् वर द्वारा साधु जीवन ग्रहण कर लिया जाना पूर्व निश्चित हो! विवाह-प्रसग से मेरे जीवन के भावी स्वरूप पर तो कोई प्रतिकूल प्रभाव नही होने का, किन्तु मेरे साधु हो जाने के कारण उन नव-वधुओ के जीवन पर भी क्या कोई प्रभाव नही होगा! वे कितनी असहाय और दीन हो जायँगी! यह उचित नही है कि उन्हे इस तथ्य से अवगत नही किया जाय। उनका इस विषय मे पूर्व सूचित होना अनिवार्य है। अभी तो अवसर है। यदि यह परिस्थिति उन्हे उपयुक्त प्रतीत नही होगी, तो वे इस सम्बन्ध को अस्वीकार कर सकती है। कन्याओ को अन्धकार मे रखना अनुचित है, सत्यशीलता के

विरुद्ध आचरण है। यदि इस सत्य से अवगत होकर भी वे इस विवाह को अस्वीकार नही करती तो इसके भावी परिणामो का दायित्व मुझ पर नही रहेगा। कन्याएं किसी भ्रान्ति मे नही रहेगी, तो फिर वह उनका स्वेच्छाधारित चुनाव होगा, जिसके लिए उन्ही को सोच-विचार करना है और निर्णय लेना है।

एक प्रात: जम्बूकुमार ने अपने आठ अनुचरो को बुलाया और उन्हें सन्देश लेकर आठों कन्याओ के पिताओ के पास भेज दिया। सन्देश मे इस आशय का कथन था कि मैं आपकी कन्या से विवाह तो कर रहा हूँ, किन्तु विवाह के तुरन्त पश्चात् ही मैं दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। इस सम्बन्ध मे मेरा निश्चय सुदृढ और अटल है, जिसमे परिवर्तन की कोई आशा नही रखी जा सकती। मेरे अभिभावको से इस विषय मे मुझे स्वीकृति मिल गयी है। अब बारी आपकी है कि अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर ले। आप चाहे तो इस नवीन परिस्थिति मे आप अपनी कन्या के विवाह की स्वीकृति दे, चाहे तो इस सम्बन्ध को अब भी अस्वीकार कर दे।

जब कन्याओ के पिताओ को यह सन्देश मिला तो उनके चरणो के नीचे से धरती ही खिसकने लगी। वे भौचक्के से रह गये। इस सम्बन्ध के विषय मे विचार-विमर्श के दौरान यह बिन्दु तो कभी आया ही नही! प्रसग बड़ा गम्भीर है, जिसमे उनकी पुत्रियो के भावी जीवन का सीधा सम्बन्ध है। श्रेष्ठियो ने सावधानी से सन्देश की सूचना अपनी धर्मपत्नियो को दी। वे भी

चिन्तित हो गई। एक श्रेष्ठि ने दूसरे से, दूसरे ने तीसरे श्रेष्ठि से विचार-विमर्श किया। आठो श्रेष्ठि-दम्पत्ति एकत्रित होकर विचार करने लगे। सुदीर्घ विचार विनिमय के पश्चात भी जब कोई मार्ग नही निकल पाया तो इन अभिभावको ने यही निश्चय किया कि अब इस प्रश्न का निर्णय स्वय कन्याओ पर ही छोड़ दिया जाय।

निदान आठो कन्याएँ एक स्थल पर एकत्रित हुई और प्रस्तुत समस्या पर विचार करने लगी। यह समस्या सर्वाधिक रूप से इन्ही के लिए गम्भीर थी और इन्होने भी पूरी गम्भीरता के साथ ही इस पर मनन आरम्भ किया। सभी कन्याएँ व्यक्तिगत रूप से अपना-अपना दृष्टिकोण निर्मित कर चुकी थी। अब तो इन्हे किसी एक सयुक्त निर्णय पर आना था। एक कन्या ने विचार-विमर्श के क्रम को आरम्भ करते हुए कहा कि बहनो! समस्या वास्तव मे बडी ही कठिन है, इसी पर तो हमारा भविष्य अवलम्बित है। अत पूरी सावधानी के साथ हमे कदम उठाना होगा। हमारे माता-पिता भी हमारे भविष्य को लेकर ही चिन्तित हैं। किन्तु मैं सोचती हूँ अव विचार करने और निर्णय करने की स्थिति है ही नही। हम लोग इस अवस्था को तो कभी का पार कर चुकी है। हमारा वाग्दान हो चुका है। हम भी जम्बूकुमार को मन ही मन पति रूप मे स्वीकार कर चुकी हैं। अब भला इस प्रश्न पर सोच-विचार करने को शेप ही क्या बचता है। अब भी क्या इस पर कोई नवीन निश्चय किया जा सकता है। हमारा विवाह तो एक प्रकार से जम्बूकुमार के साथ ही हो गया है। केवल

औपचारिकताएँ शेष रह गयी है, वे भी पूरी कर ली जाएँ। अन्य कन्या ने इसके स्वर मे स्वर मिलाते हुए कहा—बहन ! तुम्हारा कथन सर्वथा उपयुक्त है। जम्बूकुमार हमारे पति है—अब हमारा विवाह कही अन्यत्र होना असम्भव है, अपितु इस विषय मे सोचना भी पाप है। अब प्रश्न यह है कि विवाह के तुरन्त पश्चात् उन्होने साधु बन जाने का सकल्प कर लिया है। मैं समझती हूँ यह उनका दिखावा ही दिखावा है अन्यथा वे विवाह करना ही क्यो स्वीकार करते। सम्भव है कि वे इस प्रकार हमारी निष्ठा और सत्यशीलता की परीक्षा ही कर रहे हो, हम भी तो इस परीक्षा मे असफल सिद्ध नही होगी। बहनो ! वे कोई साधु-वाधु नही होने वाले। तुम सब निश्चिन्त रहो और हमे अपने निर्णय को परिवर्तित करने की आवश्यकता नही है।

एक कन्या ने बात को और आगे बढाते हुए कहा कि अच्छा हो, यदि साधु जीवन ग्रहण कर लेने का सकल्प कोई बहाना ही हो। यदि यह उनका बहाना न होकर वास्तविकता भी रखता हो, तब भी उनका यह संकल्प क्या सकल्प रह भी सकेगा। अरी बहनो ! जब वे अपनी नव-वधुओ के शृगार को देखेंगे तो मुग्ध हो जायेगे। हमारे सौन्दर्य के उन्मादक प्रभाव से क्या वे बच सकेगे। यौवन और आकर्षण के बन्धन मे वे ऐसे बँधेगे कि उन बन्धनो से मुक्त होने की कामना भी उनके चित्त मे कभी अकुरित नही हो पाएगी। वे साधु क्या बनेंगे ? उनका मन स्वय उन्हे इसके लिए प्रेरित करेगा तब न ! और मन होगा हमारे बश मे, उस पर उनका अधिकार ही शेष नही रहेगा। बहनो !

मेरा विचार तो यह है कि यदि वास्तव मे जम्बूकुमार ने साधु बन जाने का व्रत ले भी रखा हो, तब भी उससे हमे चिन्तित होने की आवश्यकता नही। वे स्वय ही अपने व्रत को विस्मृत कर देंगे। और मात्र इस काल्पनिकभय के अधीन होकर हमे अपने धर्म से विचलित नही होना चाहिए। हम मन से एक बार जब जम्बूकुमार को अपना पति मान चुकी है—तो हमारा विवाह उन्ही के साथ सम्भव है।

विचारो के इस क्रम को एक कन्या ने और आगे बढाते हुए कहा कि बहन! तुम्हारे इस मत मे भी कोई अनौचित्य नही दिखायी देता, लेकिन प्रभु ऐसा न करे, यदि जम्बूकुमार ने दीक्षा ग्रहण कर ही ली, तब भी हम लोगो के लिए क्या सकट है। जम्बूकुमार ही विवाह के पश्चात हम सबके तन-मन के स्वामी होगे। वे जिस मार्ग पर अग्रसर होगे वही हम सभी का मार्ग भी होगा। हमारे पतिदेव ही तो हमारे लिए अनुकरणीय होगे। फिर सोचने की बात यह भी है कि वे जिस मार्ग को अपनाना चाहते हैं—वह क्या श्रेयस्कर नही है? इस मार्ग को अपनाने को अन्त प्रेरणा तो सौभाग्यशाली लोगो को ही मिलती है। पत्नी का भाग्य विवाहोपरान्त अपने पति से जुड जाता है। पति के यश-अपयश का उचित अश पत्नी को भी सहज रूप मे और स्वत ही प्राप्त हो जाता है। उस प्रकार यह तो हमारे लिए महान सौभाग्य का प्रसंग होगा। पतिदेव के चरण-चिह्नो पर चलकर हम भी धन्य हो जायेंगी। सुनो बहनो! यदि ऐसा ही हुआ तो यह हम सब के लिए भाग्योदय ही होगा। हम भी सत्य,

अहिंसा, क्षमाशीलता तथा साधना के मार्ग पर अग्रसर होगी। साध्वी जीवन धारण कर हम भी चिर आनन्द की प्राप्ति के लिए सचेष्ट रहेगी। हमारे लिए इसमे हानि का प्रसग कौन-सा है ? मुझे लगता है कि हमारे लिए यह आत्मोन्नति का एक सुन्दर अवसर है, जिसे हमे खोना नही चाहिए।

सभी कन्याओ ने इस प्रकार अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये और अन्तत यही निश्चय किया गया कि जम्बूकुमार के दीक्षा ग्रहण करने के व्रत के कारण हमे विचलित नही होना चाहिए। हमारा विवाह पूर्व निश्चय के अनुसार जम्बूकुमार के साथ ही होना चाहिए। इस निश्चय मे किसी प्रकार का कोई परिवर्तन न तो शोभनीय एव उचित है और न ही आवश्यक है। कन्याओ के इस निश्चय की सूचना उनके माता-पिताओ को भी मिल गई और उन्होने जम्बूकुमार तथा उनके पिता को अपनी अन्तिम स्वीकृति भेज दी। परिणामत विवाहोत्सव की तैयारी और उत्साह, जो बीच मे कुछ मन्द हो चला था, अब पुन. तीव्र और प्रखर होने लगा।

विवाह का निश्चित दिन भी आ पहुँचा। शुभ वेला मे श्रेष्ठि ऋषभदत्त के भवन से वरयात्रा का प्रस्थान हुआ। माता धारिणी का हृदय तो आज अपनी चिर प्रतीक्षित कामनापूर्ति से अत्यन्त हर्षित था। वर-वेश मे अनुपम और बहुमूल्य वस्त्रा-लंकारो से शोभित अपने पुत्र को देखकर धारिणीदेवी के मन को अद्भुत शीतलता और सन्तोष का अनुभव होने लगा। उसके

स्नेहपूरित नेत्रो से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। समस्त शुभाशीर्वादो के साथ माँ ने पुत्र को विदा किया। गजारूढ जम्बूकुमार का रूप अत्यन्त दिव्य और भव्य था। वे देवता ही लग रहे थे। समस्त बराती जन भी भाँति-भाँति के वस्त्रालकारो से सजे-सँवरे थे। हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि विविध वाहनो मे आरूढ ये वराती जन भी अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। सर्वत्र आनन्द और उमग का वातावरण था। भाँति-भाँति के वाद्यो का घोप इस उत्साह को कई गुना बढाता जा रहा था। पुष्पहार स्वय ही वर के कण्ठ से लगकर मानो गौरवान्वित हो रहे थे। राजगृह नगर मे ऐसी भव्य वरयात्रा वर्षो से नही निकली थी। उत्कठित नारियो ने अपने गवाक्षो से इसकी शोभा को निहारा और सराहा। नागरिक जनो के विशाल समुदाय मार्ग के दोनो ओर एकत्रित हो गये थे। सभी ने शुभाशीर्वादो के साथ वर के लिए मगल कामनाएँ की।

अत्यन्त भव्यता के साथ जम्बूकुमार का पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न हुआ। कन्या पक्ष ने अपनी मान-मर्यादा के अनुरूप अपार दहेज और भेंट आदि का आयोजन किया। विदा होकर वर जम्बूकुमार जव अपनी आठो वधुओ के साथ लौटकर आये तो द्वार पर आरती उतारकर धारिणीदेवी ने वर-वधुओ का मगलाचार सहित स्वागत किया। आज उसके एक स्वप्न ने आकार ग्रहण कर लिया था। उसका भवन आज सुख और सम्पदाओ से भर गया था। धारिणीदेवी की आशकाएँ आज समाप्त हो चली थी और उसे सर्वत्र रस ही रस, रग और उमग दृष्टिगत

होने लगी। मगलगानो से ऋषभदत्त का प्रासाद गूँज उठा। शहनाई का अनवरत स्वर सभी के हृदयो के हर्ष को उजागर कर रहा था। सर्वत्र माधुर्य ही माधुर्य बिखर गया था।

श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने इस मगल अवसर पर अपने मित्रो, सम्बन्धियो को प्रचुर और मूल्यवान उपहार भेंट किये तथा मुक्त हस्तता के साथ दीन-हीनो को दान दिया। ऐसा शुभ दिवस उसके जीवन मे प्रथम बार ही तो आया था। उसके हर्ष का भी पारावार नही रहा।

सध्या समय आठो वधुएँ एकत्रित हुई। रूप की दीप्ति से वे दमक रही थी। अत्यन्त मूल्यवान अलकारो का योग उस दमक को और अधिक अभिवर्धित कर रहा था। सुन्दर वस्त्रो मे गुड़ियाओ सी सजी ये दुल्हने परियो के समान लग रही थी। उनकी वाणी मे अद्‌भुत मधुरता थी। चापल्य और आकर्षक भगिमाएँ तो मानो रति को भी पीछे छोड़ देती थी। सारा कक्ष सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित हो उठा था। भाँति-भाँति के पुष्पो से सज्जित यह कक्ष सहसा स्तब्धता का केन्द्र हो गया। वर जम्बूकुमार के आगमन की सूचना भी यहाँ आ गयी थी। वधुओ के कान द्वार पर लग गये थे। प्रत्येक पदचाप पर उन्हें पतिदेव के आगमन की सभावना लगने लगती और हृदय तेजी से धड़क उठता। जब वर ने इस कक्ष मे प्रवेश किया तो उनका स्वागत करने को सभी वधुएँ अपने-अपने आसन से उठकर द्वार तक आयी, नतमस्तक रह कर मौन रूप मे ही उन्होंने अपने हृदय के समस्त अनुराग का समर्पण कर दिया। अब जम्बूकुमार आगे और वधुएँ धीरे-धीरे चलने

लगी। वर ने आसनो की पक्ति मे मध्यासन को ग्रहण किया। वधुएँ भी अपने-अपने आसनो पर बैठ गयी। वातावरण सहसा वोझिल और गम्भीर हो गया। कुछ क्षणो तक किसी ने कुछ नही कहा। जम्बूकुमार की स्थिति भी उस पक्षी की भाँति थी जो उडान भरने के पहले अपने डैनो को तोल रहा हो। वधुएँ अपने पतिदेव के प्रथम सम्भाषण को सुनने के लिए उत्कठित थी। सबका ध्यान अभी जम्बूकुमार की ओर ही था और वे छिपी-छिपी दृष्टि से अपने पति के अपार सौन्दर्य को निहार रही थी।

जम्बूकुमार अपनी नवयौवना, रूपसी पत्नियो के साथ बैठे थे, सर्वत्र एक मादक वातावरण छाया था, विलास सामग्रियो का भी एक खासा जमघट था, किन्तु इन सबके प्रति जम्बूकुमार सर्वथा रुचिहीन थे। वे तो जल मे कमलवत् थे। विकार की कोई छोटी सी लहरी भी उनके मानस को स्पर्श नही कर पा रही थी। इस सारे सरस प्रसग की कोई भी प्रतिक्रिया उनके चित्त पर नही थी। यह क्षण उनके लिए तो वह पावन मुहूर्त था कि जब उन्हे अपनी आत्मोन्नति की यात्रा आरम्भ करनी थी। कुछ क्षण जम्बूकुमार अपने मन्तव्य को मन ही मन आकार देते रहे और फिर मिलन कक्ष की गम्भीर चुप्पी को भग करते हुए मुखरित हुए। उन्होंने कहा कि भव्य आत्माओ! सुनो, तुम्हे यह सब तो ज्ञात ही है कि कल प्रात काल ही मैं अपने पूर्व निश्चय के अनुसार गृह-त्याग कर सयम स्वीकर लूंगा। कदाचित् तुम्हे विस्मय होता होगा कि सुख-सुविधाओ भरा यह जीवन मेरे लिए उपेक्षा का विपय क्यो बन गया है। उपलब्ध सुखो को त्याग कर मैं स्वेच्छा

से कष्टपूर्ण जीवन का वरण क्यो कर रहा हूँ ? सो, वस्तुस्थिति यह है कि इन दोनो प्रकार के जीवन मे से किसे छोड़ूँ, किसे अपनाऊँ—यह अन्तर्द्वन्द्व मेरे मन मे बहुत पहले ही छिड़ चुका है। उस द्वन्द्व के परिणामस्वरूप मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि भौतिक और अवास्तविक सुख सारहीन है, थोथे है और छलावे मात्र हैं। ये दारुण कष्टो को निमन्त्रित करते है। अत. मैंने अनन्त सुख, सन्तोष और शान्ति को अपना लक्ष्य बनाया है। उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सयम का ही एकमात्र मार्ग है। उसे अपनाने के लिए गृह-त्याग आवश्यक है। मेरे लिए अज्ञान के समस्त आवरण हट गये है और माया-मोह, विषय-वासनादि सभी मेरे लिए अब अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट हो गये है। उनके घोर दुष्परिणामो से भी मैं अवगत हो गया हूँ। अत इनके फन्दे मे ग्रस्त होकर मैं आत्महानि नही करना चाहता। अब तो दीक्षा ग्रहण कर साधु-जीवन अपना लेना ही मेरा प्रथम चरण होगा। मैं इस निश्चय पर अटल हूँ और किसी को मुझे इस निश्चय को डिगाने का प्रयत्न करना भी नही चाहिए।

अब तक रात्रि उतर आयी थी। वातावरण नीरव हो गया था। जम्बूकुमार अपनी नव-वधुओ को प्रतिबोध प्रदान कर रहे थे। उस नीरवता मे जम्बूकुमार के एक-एक शब्द का गूढ़ अर्थ स्वत ही स्पष्ट होता चला जा रहा था। वधुएँ चित्रलिखित सी शान्त और चेष्टाहीन अवस्था मे अपने पतिदेव के कथन को हृदयगम कर रही थी। इस मधुराका का भी एक विलक्षण ही स्वरूप था।

८ : तस्कर प्रभव का हृदय-परिवर्तन

जम्बूकुमार तो अपने सुसज्जित कक्ष मे नव-वधुओ को प्रतिबोध प्रदान कर रहे थे और श्रेष्ठि प्रासाद मे शेष सभी स्वजन-परिजन, आगत अतिथि आदि विश्रामरत थे। इसी रात्रि मे एक और घटना घटित हो गयी।

प्रभव नाम का एक क्षत्रिय-पुत्र चौर्यकला मे अत्यन्त निपुण था। वह कुछ ऐसी विद्याओ का भी स्वामी था, जिनके प्रयोग से वह अपने चौर्यकर्म को सुगमता और सफलता के साथ सम्पन्न कर लिया करता था। उसका एक विशाल दल था और विपुल धन राशियो पर ही वह हाथ साफ किया करता था। प्रभव अपने कार्य मे इतना निपुण और दक्ष था कि वह कभी भी किसी की पकड मे नही आया। अपनी कला के इसी कौशल के आधार पर वह सारे देश मे विख्यात था। इसी रात उसने श्रेष्ठि ऋषभदत्त के प्रासाद को अपना लक्ष्य बनाया और वह स्वय अपने सहयोगियो के साथ भवन मे प्रविष्ट हो गया। उसने सर्वप्रथम अवस्वापिनी विद्या के प्रयोग से प्रासाद भर के समस्त प्राणियो को गहन निद्रा के अधीन कर दिया। उसे अपनी विद्या पर पूर्ण विश्वास था। अत इस विद्या का प्रयोग करने के पश्चात् उसे कभी उस प्रयोग की सफलता का परीक्षण करने की आवश्यकता ही अनुभव नही हुई। यहां भी उसने चिन्ता नही की और जाँच करने का प्रयत्न

नही किया कि कोई व्यक्ति अवस्वापिनी विद्या से अप्रभावित रह कर जाग तो नही रहा है। निश्चित होकर प्रभव और उसके साथी अपने कार्य मे लग गये। एक अन्य कला का जब उसने प्रयोग किया तो समस्त ताले स्वतः ही खुल पड़े। कोई बाधा नही ! कोई विरोध नही !! चोर-दल बेधडक सभी कक्षो से सम्पत्ति बटोरने लगा। प्रभव के लिए यह बडा उत्तम अवसर था। उसने सोचा था कि वैसे ही श्रेष्ठि ऋषभदत्त के यहाँ विपुल धन है और आज तो आठ अन्य श्रेष्ठियो के यहाँ से प्रचुर सम्पत्ति दहेज आदि के रूप मे भी यहाँ आयी हुई है। ऐसा अवसर वर्षों मे कभी-कभी ही हाथ आता है। यही सोचकर प्रभव ने ऋषभदत्त के यहाँ चोरी करने की योजना बनाई थी। उसने जितने धन की कल्पना की थी, उससे कई गुना अधिक धन पाकर प्रभव की आखे तो खुली की खुली रह गयी। उसके हृदय मे प्रसन्नता और अग-अग मे अद्भुत स्फूर्ति का संचार हो गया था। देखते ही देखते इस प्रासाद का सारा धन इन लोगो ने एकत्रित कर लिया और उन्हे सुगमतापूर्वक ले जाने के लिए गट्ठरो मे बाँध लिया। प्रभव का दल जब प्रासाद के आँगन को पार कर रहा था तभी एकाएक उसके साथियो के पैर आगे बढने से रुक गये।

आँगन मे प्रभव का सारा दल स्तम्भित अवस्था मे खड़ा था। प्रभव तो विस्मय मे डूब रहा था कि जम्बूकुमार पर मेरी अवस्वापिनी विद्या का प्रभाव क्यो नही हुआ। अवश्य ही यह असाधारण व्यक्ति है और यह भी विद्याओ का ज्ञाता है। अन्यथा यह जागता कैसे रह गया। कुछ क्षण तो प्रभव अवाक्-सा ही रह

गया । तुरन्त ही अपने आप को सँभाल कर जम्बू के समक्ष आकर प्रभव ने कहा कि हे श्रेष्ठि-पुत्र ! तुम धन्य हो, विद्या-निष्णात हो । मैं अपना परिचय तो बस इतना ही दे देना पर्याप्त समझता हूँ कि मुझे आमेर नरेश का पुत्र प्रभव कहा जाता है । पिता से निष्कासित होने के कारण चौर्यकर्म मे प्रवृत्त हो गया हूँ । इससे मेरा शेष परिचय स्वत: ही स्पष्ट हो गया होगा । श्रेष्ठिपुत्र ! मैं यह रहस्य जान लेना चाहता हूँ कि तुम पर अवस्वापिनी विद्या का प्रभाव क्यो नही हुआ । अवश्य ही तुम असाधारण और पहुँचे हुए पुरुष हो । मैं तुम्हार पिता का सारा धन पुन यथास्थान रखवा देता हूँ, रच मात्र भी अपने साथ नही ले जाऊँगा । लेकिन मेरा एक अनुरोध तुम से है । अपनी मित्रता का हाथ मेरी ओर बढ़ाओ । सुनो, मैं अवस्वापिनी विद्या जानता हूँ, वह मैं तुम्हे सिखा देता हूँ । तालो के खुल जाने की विद्या भी मैं तुम को सिखा दूंगा । बदले मे तुम भी मुझ पर कृपा करो । मुझे स्तम्भिनी और मोचनी विद्याएँ सिखा दो, जिनके तुम ज्ञाता हो । मैं तुम्हारा बड़ा आभारी रहूँगा और मेरी विद्याएं भी तुम्हारे लिए बडी लाभकारी तथा उपयोगी सिद्ध होगी ।

शान्त भाव के साथ जम्बूकुमार प्रभव की सारी बाते सुनते रहे । तत्पश्चात् अत्यन्त तटस्थतापूर्वक उन्होने उत्तर दिया कि भाई प्रभव ! मुझे तुम्हारे प्रस्ताव मे कोई रुचि नही । मैं तुम्हारी इन कलाओ और विद्याओ को सीखकर क्या करूँगा । मैं तो प्रात होते ही समस्त सम्पदाओ को त्याग कर, जागतिक सम्बन्धो को विच्छिन्न कर प्रव्रजित हो जाऊँगा । माया-मोह से मेरा मन विरक्त

हो गया है। धन, सम्पदा, वैभव, विलास मेरे लिए सब कुछ असार और तुच्छ है। फिर मेरे लिए तुम्हारी इन विनाशकारी विद्याओ का क्या अर्थ हो सकता है। पंच परमेष्टि मन्त्र को ही मै सर्वोच्चि विद्या, सर्वोच्चि मन्त्र मानता हूँ। वही मेरे लिए सर्वस्व है। मुझे तो आत्मविद्या के अतिरिक्त किसी भी विद्या की आवश्यकता ही नही है।

श्रेष्ठि-पुत्र जम्बूकुमार के इस सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उत्तर से तो प्रभव के मन पर अतिशय प्रभाव हुआ। कुछ पलो तक तो वह विचारो मे ही खोया रह गया। जम्बूकुमार के विषय मे वह सोचने लगा कि अतुलित वैभव, प्रचुर सम्पत्ति, अनन्त सुख सुविधाओ को तुच्छ मानकर यह श्रेष्ठि-पुत्र इन सबके उपभोग को ठुकरा कर साधु बनने को तत्पर है और एक मैं हूं कि धन के लिए कुकर्म करता हूँ। दूसरों के अधिकार का धन अपराध और अनीति-पूर्वक हडपने मे ही मैं रुचिशील रहा हूँ। धन के लोभ ने मुझे अन्धा बना दिया है। मैं करणीय अकरणीय कर्मों के भेद को ही भूल गया हूँ। मेरे पातको का तो कोई पार ही नही है। धन्य है जम्बूकुमार और सौ-सौ बार धिक्कार है मुझे। उसका मन आत्मग्लानि से भर उठा। उसके मन मे अब सुपथ और कुपथ का भेद स्पष्ट होने लगा और एक अन्त.प्रेरणा भी जागरित होने लगी कि अब मुझे दुर्जनता का त्याग कर सुपथगामी हो जाना चाहिए। आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलकर ही मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

इस सक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त गूढ चिन्तन ने प्रभव के सारे जीवन-दर्शन को ही परिवर्तित कर दिया। उसके हृदय मे उथल-पुथल होने लगी। उसने अत्यन्त अधीरता के साथ जम्बूकुमार से निवेदन किया कि हे श्रेष्ठि-पुत्र ! तुम धन्य हो कि इतनी अल्पायु मे ही जीवन के उचित मार्ग को पहचानने और उसे अपनाने मे समर्थ हो गये हो। तुम्हारे समक्ष मैं कितना क्षुद्र हूँ। तुम्हारी त्याग-भावना से मुझे बडी प्रेरणा मिली है। मैं अभी से अपने कुकर्मो को त्याग देना चाहता हूँ। क्या मैं आत्मोत्थान के लिए साधना का मार्ग नही अपना सकता ? हे श्रेष्ठि-पुत्र ! तुमने अपने जीवन को तो सफलता की ओर उन्मुख कर लिया हैं, तनिक इस पतित जन को भी कल्याण का मार्ग बताओ, मुझे भी ज्ञान दो। मैं अपने जीवन को सफल बना लेने के लिए सब कुछ करने को तत्पर हूँ। मैं इस कुत्सित जीवन को त्याग ही चुका हूँ। अब मुझे नयी दिशा दो।

चोर प्रभव के इन हार्दिक उद्‌गारो से जम्बूकुमार को आन्तरिक आह्लाद का अनुभव हुआ। उन्होने प्रभव को अत्यन्त प्रभावकारी रूप मे प्रतिबोधित किया। सासारिक विषयो से विरक्त होकर प्रभव का मन जिन-शासन मे प्रवृत्त होने लगा। प्रभव और उसके दल के सभी सदस्यो ने जम्बूकुमार के समक्ष प्रव्रजित होकर साधु-जीवन अगीकार करने की अभिलाषा प्रकट की। जम्बूकुमार ने प्रभव और उसके सहयोगियो की इस सद्‌प्रवृत्ति के लिए प्रशसा की और उनके भावी जीवन के स्वरूप के चयन के लिए प्रसन्नता व्यक्त की। प्रभव का दल तो कृतकृत्य हो उठा। अत्यन्त आभार

स्वीकार करते हुए वे लोग जम्बूकुमार से विदा हुए—इस अभिलाषा के साथ कि यथाशीघ्र वे अपने अभिभावको से अनुमति प्राप्त कर लें और सयम ग्रहण करें। प्रभव का दल बड़ी शान्ति और गम्भीरता के साथ श्रेष्ठि-प्रासाद से बाहर निकला। जब इस रात्रि मे इस दल ने भवन मे प्रवेश किया था तब ये लोग कुछ और ही थे और अब, जब वे यहाँ से विदा हो रहे थे वे कुछ और ही हो गये थे। उनका हृदय-परिवर्तन हो गया था, वे सन्मार्गी हो गये थे और इसका श्रेय जम्बूकुमार के प्रभाव को ही प्राप्त होता है।

●

उत्तर खण्ड

अपने पति जम्बूकुमार से प्रतिवोध प्राप्त कर आठो नव-वधुओ को भी सन्मार्ग की प्रेरणा अवश्य हुई, किन्तु उनकी आत्मा का जागरण अभी पूर्णत. नही हो पाया था। वे अपने दुराग्रह पर दृढ भी थी और यह उनके लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न भी हो गया था कि किसी न किसी प्रकार से जम्बूकुमार को वे उनके निश्चय से विचलित कर दें। अव साक्षात्कार हो जाने पर वधुओ को यह विश्वास तो हो ही गया था कि जम्बूकुमार के निश्चय मे दृढ़ता भी है और वास्तविकता भी—वे किसी अन्य प्रयोजन से इस प्रकार का वहाना नही कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति मे इन वधुओ को अनुभव होने लगा कि साधारण प्रयत्नो से उन्हे उनके उद्देश्य मे सफलता नही मिल सकेगी। पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग करने के विचार से इन श्रेष्ठिकन्याओ ने अपने ज्ञान और अनुभवो के आधार पर ऐसे तर्क सोचे, जिन्हे प्रस्तुत कर वे अपने पति को उसके मार्ग से विमुख कर सकें। अपने तर्कों को और अधिक प्रभावपूर्ण और वजनदार वनाने के उद्देश्य से उन्होंने अपनी धारणाओ को दृष्टान्तो के माध्यम से प्रस्तुत किया। वारी-वारी से एक-एक वधू अपना प्रयत्न करती गयी और उत्तर में जम्बू-

कुमार भी ऐसे दृष्टान्त प्रस्तुत करते गये जिनसे वे अपने पक्ष का औचित्य सिद्ध करते रहे। मिलन की यह रात्रि इन पति-पत्नियो के लिए मानसिक सघर्ष की रात्रि हो गयी थी। दोनो पक्ष अपने-अपने मत का औचित्य सिद्ध करने के लिए प्रवलतर प्रयत्न करते रहे और विपरीत पक्ष को अपने से सहमत करने के लिए, अपने प्रयत्न मे विजय प्राप्त करने के लिए पूर्ण शक्ति के साथ सचेष्ट रहे। यह रात्रि शक्ति परीक्षण की रात्रि हो गयी थी।

: १ लोभी वानर की कथा : पद्मश्री का प्रयत्न

जम्बूकुमार को संसार-विमुखता एवं विरक्ति से हटाने के लिए सर्वप्रथम पद्मश्री ने प्रयत्न आरम्भ किया। उसने अपनी वाणी मे कोमलता का स्पर्श देते हुए पतिदेव को सम्बोधित किया और अपना मन्तव्य प्रकट किया कि विवेकशील प्राणियो को सदा सन्तोषी होना चाहिए। उपलब्ध सुख-वैभव से असन्तुष्ट रहकर 'और-और' की चाहना रखने वाले व्यक्तियो का जीवन अनेकानेक क्लेशो का समुच्चय बनकर ही रह जाता है। आपके जीवन मे सभी सुख हैं। सम्पन्न परिवार है, अपार वैभव और सुख-सुविधाएँ आपके लिए सदा उपलब्ध हैं, रति-सी सुन्दर आठ-आठ पत्नियाँ आप पर प्राण न्योछावर करने को तत्पर है। कोई भी तो अभाव नही है कि जिसकी पूर्ति की कामना आपके मन मे शेष हो। इन सुखो का उपभोग करके ही आपको अपने जीवन की सफलता और सार्थकता मान लेनी चाहिए। अन्तत· ये सुख भी तो आपको अपने पूर्वजन्म के पुण्यो के परिणामस्वरूप ही प्राप्त हुए है—इन्हे त्यागकर आप अन्य काल्पनिक सुखो को महत्व दे रहे हैं—इसमे हमे कोई औचित्य प्रतीत नही होता। भाग्य ने जो सुख दिये हैं उन्हे ठुकरा कर पुन. सुख के ही पीछे भागना तो बड़ा अटपटा लगता है। आप इन नवीन सुखो को अधिक महत्वपूर्ण व वास्तविक कहकर भले ही उनके औचित्य का प्रतिपादन करनो

चाहे, किन्तु इनकी मृग-मरीचिका मे पडकर कही आपकी स्थिति ऐसी न हो जाय कि न इधर के रहे, न उधर के। इस समय मुझे उस वानर की कथा स्मरण आ रही है जिसने सौभाग्य से नर देह प्राप्त कर ली, किन्तु उस उन्नत स्थिति से असन्तुष्ट होकर वह देवता बनने की साध रखने लगा था और इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उसके हाथ से नरदेह का अवसर भी जाता रहा। उसे पुनः वानरदेह प्राप्त करनी पड़ी और नाना भाँति के कष्ट भोगते हुए उसे जीवन भर पछताते रहना पड़ा। प्राणनाथ ! मै वानर की वह कथा आपको सुनाती हूँ—

किसी घने वन मे स्वच्छ जल से भरी एक नदी बहा करती थी। वन मे एक स्थान पर इस नदी मे एक द्रह बना हुआ था। जो फैलाव मे भी बड़ा था और गहरा भी था। इस द्रह मे ग्रीष्म ऋतु मे भी सदा ही निर्मल जल लहराता रहता था। भाँति-भाँति के फल-फूलो, लता-द्रुमो से यह वन अत्यन्त समृद्ध और शोभाशाली था। पक्षियो के कलरव से तो वन का चप्पा-चप्पा गुंजरित रहा करता था। द्रह के तट पर एक विशाल और सघन वृक्ष था, जिस पर एक वानर-युग्म का निवास था। भाँति-भाँति के सरस और स्वादिष्ट फलों का भोजन और द्रह का शीतल जल, क्रीडा के लिए इस वृक्ष की अनेक छोटी-बड़ी शाखाएँ—सभी प्रकार का सुख उस जोडे को वहाँ उपलब्ध थे। कोई कठिनाई, कोई समस्या नही ! कदाचित् दीर्घकाल से ये वानर-वानरी इस वृक्ष को ही अपना निवास-स्थान बनाये हुए थे। एक दिन दोनो इस वृक्ष की शाखाओ मे कुलाचें भर

रहे थे, उछल-कूद कर रहे थे कि सहसा वानर के हाथ से डाल छूट गयी और धम्म से वह द्रह मे गिर पडा। यह देखकर वानरी के तो प्राण ही सूखने लगे। वह क्रन्दन करने लगी। उसके करुण स्वर से सारे वन मे ही दैन्य छाने लगा। उसकी दृष्टि जल मे उस स्थान पर लगी हुई थी जहाँ वानर डूवा था। उसे आरम्भिक क्षणो मे तो यह आशा थी कि कदाचित् वानर जीवित निकल आये, पर ज्यो-ज्यो समय व्यतीत होता गया उसकी यह आशा धूमिल होने लगी और क्रन्दन-स्वर उच्च से उच्चतर होने लगा। सहसा उसके विलाप पर एक विराम लगा। उसने देखा कि पानी मे उसी स्थान पर बुलवुले उठने लगे हैं। फिर तो वहाँ से वृत्ताकार लहरें उठने लगी और कुछ ही क्षणो मे एक अत्यन्त सुन्दर युवक जल से निकल आया। उसने एक दृष्टि ऊपर वृक्ष पर डाली और वानरी की ओर स्नेह से ताकने लगा। तुरन्त ही एक विवशता उसके नेत्रो मे तैरने लगी। वानरी को यह समझने मे विलम्व नही हुआ कि इस द्रह के चमत्कार से ही वानर को नरदेह प्राप्त हो गयी है, किन्तु अव हमारा साहचर्य कैसे सम्भव होगा! उसने सोचा कि मैं भी जल मे छलाग लगा लेती हूँ। जल के प्रभाव से निश्चित ही मैं भी सुन्दर नारी हो जाऊँगी और हमारा पुन. साथ हो जायगा। आगामी क्षण ही उसके मन मे यह आशका भी कौंध गयी कि वानर के पूर्वजन्मो के सुकर्मों के कारण ही तो कही उसे यह सुपरिणाम नही मिला है। यदि ऐसा हुआ तो कौन जाने मेरे कर्म कैसे रहे है और मुझे यह गति प्राप्त हो सकेगी या नही! उसका मन पुनः दृढ़ हो गया

और वह सोचने लगी कि अरे ! यदि नारी देह नही भी मिली तो मृत्यु ही तो होगी। वियोग के दु:खो मे जीवित रहने की अपेक्षा तो यह मृत्यु ही भली है। और उसने भी तुरन्त ही वृक्ष पर से पानी मे छलाग लगा ली। परिणाम वानरी के साथ भी ऐसा ही हुआ और हे स्वामी ! वह वानरी तो अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न नारी हो गयी। अब वह वानर-युग्म नर-नारी के जोड़े मे परिवर्तित हो गया। पहले की अपेक्षा अब इनके पास सुखो की अधिक विस्तृत परिधियाँ थी। आनन्द की अनन्तता हो गयी थी उनके लिए।

कथा के अग्राश को मन-ही-मन सुनियोजित कर लेने के लिए पद्मश्री एक क्षण के लिए रुकी और आत्म-विश्वास के साथ उसने पुन. कथन आरम्भ किया। हे प्राणेश्वर ! वह नारी रूप-धारिणी वानरी तो अपने जीवन के इस नवीन रूप से पूर्णतः सन्तुष्ट थी, किन्तु वानर का महत्वाकाक्षी हृदय इस अवस्था को तुच्छ समझने लगा था। उसे तो और अधिक उन्नत अवस्था की अभिलाषा थी। इन सुखो से असन्तुष्ट वानर दिव्य सुखो की साध रखता था। वह तो नरदेह से भी श्रेष्ठ देव-देह का आकाक्षी था। उसने वानरी से अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि प्रियतमा ! हमे निरन्तर आगे से आगे बढता रहना चाहिए। तुम्हारी अल्पबुद्धि इन सुखो को ही सीमा मान बैठी है, किन्तु यह तो सुखो का आरम्भ मात्र है। क्यों न हम इनसे श्रेष्ठ सुखोपभोग के लिए प्रयत्न करें। आओ नर-देह त्यागकर हम देव-देह प्राप्त कर लें फिर तो हमारे लिए सब कुछ सुलभ हो

जायगा। आओ हम फिर से इस वृक्ष पर चढे और द्रह मे कूद पडे। और अवकी बार हम देव होकर निकलेंगे। यह सोच-विचार करने का समय नही है, शीघ्रता करो। वानरी इससे सहमत नही थी। उसकी धारणा थी कि लोभ मे पडकर हम वर्तमान सुखो से ही कही हाथ न धो वैठे। उसने वानर को वोध देते हुए कहा कि सन्तोष ही मे सार है, प्रियतम! जो हमे भाग्य ने दिया है, हमे उसी को वहुत मानकर आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। लोलुपता तो समस्त सुखो का सर्वनाश ही कर देगी। तनिक शान्ति से सोचो कि ये सुख ही हमारे लिए कौन-से कम हैं। वानरी के सारे प्रयत्न विफल हो गये। लोभी वानर पर उनका कोई प्रभाव नही हुआ। लालसाओ के अधीन होकर वह नर-देह धारी वानर वृक्ष पर चढ गया और द्रह मे कूद पड़ा। पानी से निकलकर उसने अपनी देह की ओर निहारने से पूर्व ही गर्व का अनुभव किया। उसका अनुमान था कि वह अव देव वन गया है और अपनी धारणा की पुष्टि के लिए ज्यो ही अपनी देह की ओर उसने दृष्टि डाली—वह हाहाकार कर उठा। वानरी ने भी देखा तो हठात् ही दुखित हो उठी। यह क्या? उसका नरदेह तो पुन. वानरदेह मे परिणत हो गया था। इस दारुण दुर्भाग्य के रूप मे वानर को उसके लोभ का दण्ड मिल गया था। तीव्र पछतावे के आवेश मे वह छटपटाने लगा, किन्तु अव हो ही क्या सकता था! वानरी भी निराश हुई। वानर से अव उसका वियोग निश्चित था—वह उद्विग्न थी कि वानर वेचारे का क्या होगा। वानर वेचारा सोचने लगा

देव बनना तो कदाचित् मेरे भाग्य मे नही था, किन्तु मानव तो मैं बन ही सकता हूँ—मैं उसी स्थिति मे चला जाता हूँ और जो कुछ उपलब्ध होगा, उसी मे सन्तोष कर लूंगा। वानरी बेचारी सही कहती थी, किन्तु मैंने उसकी सुनी ही नही। उसी का दुष्परिणाम भोगना पड़ा है। यह सोचते-सोचते वह पेड़ पर चढ गया और उसने जल मे छलाग लगायी। वानर का दुर्भाग्य तो अटल हो गया था। उसे नही बदलना था—सो नही ही बदला। वानर ने कई बार छलागे लगायी, किन्तु वह वानर का वानर ही बना रहा। नर-देह भी उसे प्राप्त नही हो सकी। वह उसी अवस्था मे आत्म-ग्लानि से भर उठा और अपना सिर पीटने लगा। वानरी बेचारी भी कष्टित थी, किन्तु कुछ भी तो सहायता नही कर सकती थी वह।

उस दिन उस राज्य का नृपति इसी वन मे आखेट के लिए आया हुआ था। विचरण करते-करते वह इस ह्रद के तट पर पहुँचा। भू-पति ने ज्योंही इस सुन्दरी को वहाँ देखा—अचम्भित रह गया। ऐसा लोकोत्तर रूप तो उसने कभी देखा ही नही था। उसके नेत्र विस्फारित रह गये। मुग्ध नरेश ने मन-ही-मन एक विचार किया और सुन्दरी को सम्मानपूर्वक राजभवन मे ले आया। यहाँ उसने विधिवत् इस सुन्दरी के साथ विवाह किया और इसे पटरानी के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। सन्तोषी सुन्दरी (नारी-देह मे वानरी) के सुखों मे स्वतः ही वृद्धि हो गयी थी। अपार वैभव, उच्चाधिकार, श्रेष्ठ सुख-सुविधाएँ, गौरव, प्रतिष्ठा

सब कुछ उसे सुलभ हो गयी। वह राज-रानी के रूप मे जीवन विताने लगी थी।

इधर लोभी वानर की दुर्दशा की भी कोई सीमा नहीं रही। कुछ दिन तो वह वानरी के वियोग मे दुःखी होकर एकाकी भटकता रहा और एक दिन किसी मदारी ने उसे पकड़ लिया। अब उसके गले मे पट्टा और रस्सी पड गयी। वन्य जीवन भी अब उसके लिए सुलभ नही रहा। अब वह परतन्त्र होकर नगरो और गाँवो की गलियो मे घूमता रहता, मदारी के सकेत पर नाचता रहता। उसकी सारी स्वच्छन्दता नष्ट हो गयी। सयोग से मदारी अपने वानर के साथ एक दिन उसी नरेश की राजधानी मे पहुँचा। मदारी ने वानर को अच्छी तरह प्रशिक्षित किया था। वानर भी खूब मजेदार तमाशे करता था और दर्शको को वडा आनन्द आता था। नगर मे इस वानर के करतबो की प्रशसा होने लगी। एक दिन नृपति ने इस मदारी को राजभवन मे भी वुलाया।

राजा के समीप सिहासन पर वैठी राजरानी को देखकर वानर तुरन्त ही पहचान गया कि यह तो मेरी प्रिया वानरी ही है। वानर का मन क्षोभ और घोर वितृष्णा से भर उठा। प्रायश्चित्त का भाव जागकर अत्यन्त तीव्र हो गया। उसका मन वुझ-सा गया, किन्तु वह तो परतन्त्र था। अपनी आन्तरिक पीडा को दवाकर उसे मदारी के सकेतानुसार नाचना पड़ा। राजा वड़ा प्रसन्न हुआ। रानी ने भी वानर के करतबो की

सराहना की। रानी ने भी पहचान लिया कि यह वही वानर है जो मेरा साथी था। उसने अपनी दासियो को भेजकर वानर को अपने कक्ष मे बुलाया। रानी के नेत्रो से अश्रु प्रवाहित होने लगे। वह वानर की दीन दशा पर बड़ी दुखी थी। उसने वानर से कहा कि तुम अपनी वर्तमान स्थिति से बड़े खिन्न प्रतीत होते हो। यह तुम्हारी भूल है। जब तुम्हे नर-देह प्राप्त हुई थी तब भी अपनी स्थिति से भी तुम असन्तुष्ट रहे थे और उस असन्तोष के दुष्परिणाम से भी तुम परिचित ही हो। अब व्यतीत वृत्तान्त का स्मरण करना व्यर्थ है। तुम्हारे लिए वर्तमान ही सब कुछ है, उसका उपभोग करना ही सच्चा आनन्द है। द्रह मे दुबारा कूदने के उस प्रसग को विस्मृत कर देना ही उत्तम है। अब तो पूर्ण कौशल के साथ अपनी कला का प्रदर्शन करना, मदारी को प्रसन्न रखना—यही तुम्हारा कर्तव्य है। इसी कर्तव्य का निर्वाह करते-करते एक दिन तुम्हें आनन्द का अनुभव भी होने लगेगा। अतीत की भूलों पर पछताना और भावी काल्पनिक सुखो की ओर लपकना—ये दोनो ही विद्यमान सुख को भी नष्ट कर देते हैं। वानर यह सब सुनता रहा और फिर चुपचाप उठकर मदारी के पास चला गया।

उक्त कथा को समाप्त कर पद्मश्री पुन अपने पति की ओर उन्मुख हुई और बोली कि हे प्राणप्रिय! कदाचित् इस दृष्टान्त से आपको कुछ प्रकाश प्राप्त हुआ होगा। मुझे भय है कि कहीं अलौकिक, दिव्य और भावी सुखो के फेर मे पडकर आप उस वानर की भाँति अपने वर्तमान सुखो से भी हाथ न धो बैठे।

आप भी तो उसी की भाँति उपलब्ध भव्य सुखो को तुच्छ मानकर "उनके परित्याग के लिए कटिवद्ध है। ऐसी प्रवृत्ति का परिणाम घोर हा-हाकार और उद्दाम अनुताप के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता। अत. कृपाकर आप मेरा अनुरोध स्वीकार कर अपने भावी सुखो की ललक को समाप्त कीजिए। इसी परिवार मे रहकर जीवन के रस से आनन्दित होने की रुचि पनपाइये। इसी मे आपका और हम सबका हित है। दीक्षा ग्रहण करने का विचार ही अपने हृदय मे मत आने दीजिए। सभी स्वजनो के हित को ध्यान मे रखकर ही ऐसा कर लीजिए।

विचारशील जम्बूकुमार पत्नी पद्मश्री का कथन समाप्त होते-होते गम्भीर हो गये। उनकी मुख-मुद्रा से उनकी मानसिक असामान्यता प्रकट होने लगी थी और पद्मश्री को अनुभव होने लगा था कि वह जम्बूकुमार के चित्त को अनुकूल रूप से प्रभावित करने मे सफल रही है।

●

मे उस भीषण ग्रीष्म ने एक बूंद भी पानी नही छोडा था। वर्षा अभी दूर थी। प्रतिदिन की भाँति अंगारकारक उस दिन भी घर से अपने साथ पानी लेकर आया था। प्यासे कण्ठ की माँग को पूरा करने के लिए वह थोडी-थोडी देर में एक-दो घूंट पानी पीता गया और काम मे लगा रहा। उस दिन उसे प्यास बहुत लग रही थी। उसके पास का जल समाप्त होने को आया। जब पर्याप्त लकड़ियाँ एकत्रित हो गयी तो कोयले बनाने के लिए उसने उनमे अग्नि प्रज्वलित कर दी। वन का वातावरण और भी अधिक तप्त हो उठा। परिणामतः उसकी तृषा तीव्रता के साथ भडक उठी। उसने अपने पात्र को टटोला, पात्र अब रिक्त होकर सूख गया था। कुछ क्षण तो उसने प्यास को भुलावे मे डालना चाहा, किन्तु प्यास के मारे उसका बुरा हाल होने लगा। होठ पपडा गये। गला और जीभ सूखने लगी। उसे बडी पीडा होने लगी। तृप्ति की अभिलाषा से उसने आस-पास ही नही, दूर-दूर तक उस वन मे जल की खोज की किन्तु उसे निराश होना पड़ा। जल कही होता, तभी तो उसे मिल पाता। जलाभाव मे उसकी तृषा तो कई गुनी बढ गयी और वह असह्य पीडा से कसमसा उठा। दूर-दूर तक कोई गाँव नही था और अब तृषा के कारण ऐसी दुर्बलता ने उसे घेर लिया था कि उससे चला नही जा रहा था। विवश होकर वह एक वृक्ष की छाया मे लेट गया। जल की खोज करते-करते वह अब वन के ऐसे भाग मे पहुँच गया था जहाँ कुछ हरियाली थी। वृक्ष के नीचे, शीतल छाया मे उसे कुछ शान्ति अनुभव हुई। कुछ ही पलो मे उसकी आँख लग गई। वह तृषा

यह है कि ये तो सुख है ही नही। सुख की छाया मात्र है, भुलावे हैं। फिर इनका उस वास्तविक सुख के साथ तारतम्य बिठाना अनुपयुक्त है। ये तथाकथित सुख तो केवल दु खो की भूमिकाएँ है, दु'खो के जनक हैं। तीक्ष्ण तलवार की धार पर लगे मधु को चाटने के समान है। मधु की मिठास का आनन्द तो जवान को क्षणमात्र के लिए भी नही आयगा और धार मे कटकर जवान लहुलुहान हो जायगी। इन सुखो का अस्तित्व तो मात्र इतना ही है। इन सुखो के अधीन रहकर आत्मकल्याण तथा असमाप्य सुख की प्राप्ति मे वाधा रहती है, इस प्रकार इन तुच्छ सुखो के परित्याग मे ही मानव का शुभ निहित है—ऐसा निस्सन्देह स्वीकार कर लेना चाहिए। तुम्हे जो सुखरूप मे दिखाई दे रहे हैं—पद्मश्री, वे कभी किसी का स्थायी हित नही कर सकते, आनन्द नही दे सकते। इनके कपटाचार से मनुष्य जितना शीघ्र मुक्त होगा, उतना ही उसका हित होगा। मैं अपनी धारणा को भी अगारकारक के इस दृष्टान्त से प्रतिपादित करता हूँ, सुनो—

एक अगारकारक था, जो नित्य ही वन मे जाकर सूखी लकडियाँ वटोर कर उनके कोयले वनाता था। इन कोयलो के विक्रय से ही उसके परिवार की आजीविका चला करती थी। प्रचण्ड ग्रीष्म का समय था। तपती दोपहरी मे वह सायं-सायं करते वन मे लकडियाँ जुटा रहा था। भीषण आतप से वह कष्ट का अनुभव कर रहा था, किन्तु विश्राम के लिए उसके आप अवकाश कहाँ था। विश्राम करने लगे, तो अपना और पत्नी-बच्चो का पेट कैसे भरे। निदान वह परिश्रम करता रहा। वन

मे उस भीषण ग्रीष्म ने एक बूंद भी पानी नही छोडा था। वर्षा अभी दूर थी। प्रतिदिन की भाँति अंगारकारक उस दिन भी घर से अपने साथ पानी लेकर आया था। प्यासे कण्ठ की माँग को पूरा करने के लिए वह थोडी-थोडी देर मे एक-दो घूंट पानी पीता गया और काम मे लगा रहा। उस दिन उसे प्यास बहुत लग रही थी। उसके पास का जल समाप्त होने को आया। जब पर्याप्त लकडियाँ एकत्रित हो गयी तो कोयले बनाने के लिए उसने उनमे अग्नि प्रज्वलित कर दी। वन का वातावरण और भी अधिक तप्त हो उठा। परिणामत उसकी तृषा तीव्रता के साथ भडक उठी। उसने अपने पात्र को टटोला, पात्र अब रिक्त होकर सूख गया था। कुछ क्षण तो उसने प्यास को भुलावे मे डालना चाहा, किन्तु प्यास के मारे उसका बुरा हाल होने लगा। होठ पपडा गये। गला और जीभ सूखने लगी। उसे बडी पीडा होने लगी। तृप्ति की अभिलाषा से उसने आस-पास ही नही, दूर-दूर तक उस वन मे जल की खोज की किन्तु उसे निराश होना पड़ा। जल कही होता, तभी तो उसे मिल पाता। जलाभाव मे उसकी तृषा तो कई गुनी बढ गयी और वह असह्य पीडा से कसमसा उठा। दूर-दूर तक कोई गाँव नही था और अब तृषा के कारण ऐसी दुर्बलता ने उसे घेर लिया था कि उससे चला नही जा रहा था। विवश होकर वह एक वृक्ष की छाया मे लेट गया। जल की खोज करते-करते वह अब वन के ऐसे भाग मे पहुँच गया था जहाँ कुछ हरियाली थी। वृक्ष के नीचे, शीतल छाया मे उसे कुछ शान्ति अनुभव हुई। कुछ ही पलो मे उसकी आँख लग गई। वह तृषा

की पीडा से दूर-काफी-दूर होता गया। स्वप्निल जगत् मे वह विचरण करने लगा।

अगारकारक ऐसे लोक मे पहुँच गया जहाँ जल ही जल था। जलाशय, सरिताएँ, कूप सब जल से आपूरित थे। उसने बडे आनन्द के साथ जल पिया और परितोष का अनुभव किया। किन्तु तृषा थी कि पुन भडक उठी। फिर से वह जल का पान करने लगा। सभी जलाशयो, सरिताओ, कूपो का जल उसने पी डाला, किन्तु उसे तृप्ति नही हुई। उसकी तृषा शान्त नही हुई। कितना जल वह पी चुका था—इसका कोई अनुमान नही लग सकता, किन्तु फिर भी वह ज्यो का त्यो तृषित था। इसी तृषा की बेचैनी मे उसकी नीद उड गयी। वह पुन इस लोक मे उतर आया जहाँ भीषण तृषा थी और जल की एक बूंद भी नही। कुछ ही क्षणो पूर्व उसने राशि-राशि जल पी लिया था (स्वप्न मे) किन्तु उसकी प्यास तो बुझी नही। अब उसकी पीड़ा ने उसे पुन. सचेष्ट किया। वह लेटा नही रह सका। उठा और लडखडाता हुआ जल की आशा मे और आगे बढा। एक वृक्ष के नीचे उसे दूर से ही पोखर सा दिखायी दिया। उसके चरणो मे विद्युत की सी शक्ति आ गयी। वह लपक कर वहाँ पहुँच गया। उसे पोखर मे जल की उपस्थिति देखकर हर्ष हुआ। अपने गले को तर करने की उत्कट अभिलाषा के साथ उसने जल की ओर हाथ बढ़ाया और उसकी आशा पुन ध्वस्त हो गयी। यह उसका भ्रम ही था कि पोखर मे जल है। अगारकारक की अजलि मे जल के स्थान पर थोडा सा कीचड आ गया था, जिसमे तनिक भी आर्द्रता ही

शेष रह गयी थी। जलाभाव के कारण भयंकर तृषा का कष्ट सहते-सहते अगारकारक असहाय हो गया था। विवशतः वह उस कीचड को चाटने लगा। भला इससे भी कही उसकी तीव्र तृषा की तुष्टि सम्भव थी ! परिणाम तो सुनिश्चित था। प्यासा, प्यासा ही रह गया। समय के साथ-साथ उसकी प्यास और प्यास के साथ उद्विग्नता बढती ही बढती चली गयी।

अपनी कथा समाप्त करते हुए पल भर के विराम के उपरान्त जम्बूकुमार ने पत्नी पद्मश्री को सम्वोधित करने हुए अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया। उन्होने कहा कि प्रिये ! सासारिको की दशा उस अगारकारक के सदृश ही है। सुखो की तृष्णा के अधीन होकर लोग अपार वैभव, सम्पदा, सुख-सुविधाओं का उपभोग करके भी असन्तुष्ट रह जाते हैं, उनकी अतृप्त प्यास इससे बुझती नही। सच्चे सुख की प्राप्ति की कामना पूर्ण नही हो पाती। इसका मूल कारण यह है कि जिस प्रकार अगारकारक ने स्वप्न मे इतना जल पी लिया, फिर भी प्यासा बना रहा; क्योकि वह जल नही था, जल का छलावा मात्र था। जल का अवास्तविक अस्तित्व भला प्यास कैसे बुझा सकता है। ठीक उसी प्रकार हम लोग जिन्हे सुख के साधन समझते है वे सुख के सच्चे साधन नही है। वे सुख ही वास्तविक सुख नही है। वे तो सुख का आभास मात्र कराते है। ऐसी अवस्था मे ये सुख हमे सन्तोष और शान्ति कैसे दे सकते हैं ! इन सुखो की अवास्तविकता तो इसी से प्रकट हो जाती है कि ये घोर और अघोर दु खो के जनक होते है। वास्तव मे ये दु ख ही है, जो स्वय पर सुखो का आवरण डालकर आ जाते हैं—ऐसा

आवरण जो कुछ ही पलो मे हट जाता है और भीतर मे दुःख प्रकट हो जाता है। पद्मश्री ! मैं इन लौकिक सुखो के स्वरूप को भली-भाँति पहचान गया हूँ। अत मैं इसके चक्र से मुक्त हो जाना चाहता हूँ, विरक्त हो जाना चाहता हूँ। कीचड से किसी की प्यास नही बुझ सकती और इन भौतिक सुखो मे भी किसी को तृप्ति प्रदान करने की क्षमता नही होती। पर्याप्त चिन्तन के पश्चात् मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन लौकिक सुखो और भौतिक साधनो के असमर्थ उपादानो को छोडकर हमे अलौकिक आनन्द की खोज करनी चाहिए। उसी अनन्त, वास्तविक और चिरशान्तिमय सुख की प्राप्ति मानव-जीवन का लक्ष्य है। इस परम-लक्ष्य को मैंने चुन लिया है और अव इस पथ से च्युत होना मेरे लिए रचमात्र भी सम्भव नही है। स्वर्ण और सौन्दर्य की चकाचौंध भी अव मेरी दृष्टि से इस मार्ग को ओझल नही कर सकती। तुम मे से किसी को भी इस दिशा मे प्रयत्न नही करना चाहिए। ऐसा प्रयत्न शुभ तो है ही नही—उसमे सफलता भी असम्भव है। अपना कथन समाप्त कर जम्बूकुमार ध्यानमग्न-से हो गये। उनके नेत्र निमीलित हो गये।

पद्मश्री जम्बूकुमार की गम्भीर मुद्रा को निहारती रह गयी। उसने मन ही मन पतिदेव के कथन और तर्कों के औचित्य को स्वीकार किया। उसे अपने अज्ञान का आभास भी होने लगा और अपनी कुचेष्टा पर लज्जा का अनुभव भी होने लगा। पद्मश्री ने श्रद्धा के साथ जम्बूकुमार को प्रणाम किया और उनके चरणो मे नतमस्तक हो गयी।

●

३ : बंग किसान की कथा : समुद्रश्री का प्रयत्न

गृह-त्याग कर परिव्राजक बन जाने के लिए जम्बूकुमार सर्वथा कटिबद्ध थे । अपनी सकल्प-दृढता के लिए तो वे विख्यात हो ही चुके थे—अत. उनकी सभी नववधुएँ भयग्रस्त थी, व्याकुल थी । अपने आसन्न दुर्भाग्य से वे आतकित थी, किन्तु उन्होने आगत आपदा और भावी अनिष्ट के निराकरण के लिए समग्र शक्ति के साथ सचेष्ट रहने का सकल्प धारण कर लिया था । इन सभी पत्नियो ने जम्बूकुमार के मानस मे एक उद्वेलन उत्पन्न करने की योजना बनाई थी । इन के सयुक्त प्रयास का प्रयोजन यही था कि जम्बूकुमार के मन मे विरक्ति के विरुद्ध तीव्र अनास्था का भाव जागरित कर दिया जाय और इस भाँति उन्हे सासारिक सुखोप भोग के लिए प्रेरित किया जाय, उन्हे पुन जगत् की ओर उन्मुख कर दिया जाय ।

इन नववधुओ को अपने प्रयत्न मे सफल हो जाने का पूर्ण विश्वास था, जो उनके सामर्थ्य को कई गुना अधिक शक्तिशाली वना रहा था । अदम्य उत्साह के साथ पद्मश्री जम्बूकुमार को अपने मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न कर चुकी थी एव उसकी पराजय सभी अन्य सखियो ने प्रत्यक्षत. देख ली थी, किन्तु इस पराभव को उन्होने मात्र सयोग ही समझा । पद्मश्री की यह हार शेप पत्नियो के लिए प्रखर प्रोत्साहन का कारण वन गयी थी ।

समुद्रश्री को अपनी समर्थता का बडा गर्व था। उसने अपने तर्क के एक ही आघात से जम्बूकुमार के व्रत को ध्वस्त करने का निश्चय कर लिया और अनायास ही उसके मुख-मण्डल पर एक विचित्र आभा के रूप मे उसका यह निश्चय प्रतिविम्बित हो गया।

जम्बूकुमार को सम्बोधित करती हुई समुद्रवत् गम्भीर स्वर मे समुद्रश्री मुखरित हुई—स्वामी! लोक-परलोक मे अनेक श्रेष्ठ वस्तुएँ है, परन्तु ये सभी वस्तुएँ सभी के लिए नही बनी हैं। जिसकी जैसी पात्रता होती है उसे वैसी ही वस्तु उपलब्ध होती है। प्राय व्यक्ति अपने सामर्थ्य से वाहर का लक्ष्य निर्धारित कर लेता है। परिणामत उसे वह वस्तु तो मिल ही नही पाती साथ ही जो वस्तु उसे सहजत. उपलब्ध थी—उसे उससे भी हाथ धोना पडता है। हे स्वामी! ऐसी अवस्था मे उसके शेष जीवन मे निराशा, पछतावा और दु.ख ही भरा रह जाता है और मेरी मान्यता है कि आप भी इसी दुष्परिणाम की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हम सभी आपके मगल के लिए चिन्तित हैं। मैं आपसे अनुनयपूर्वक आग्रह करती हूँ कि साधना के इस विकट मार्ग पर आरूढ न होइये। यह मार्ग आपके लिए नही है और आप इस मार्ग के लिए नही है। कृपा कर एक वार पुन विचार कर लीजिए कि जिस कल्पित सुख के लिए आपका मन लालायित हो उठा है उसकी प्राप्ति का साधना-पथ कितना कटकाकीर्ण है, कितना कठिन है। अपने इस कोमल गात्र को लेकर इस मार्ग पर लक्ष्य तक पहुँचना क्या आपके लिए सम्भव है। तनिक सोचिए कि क्या आप इस

कठोर धरती को अपनी शैय्या और नीलगगन को चादर बना सकेंगे। क्या आप पथरीले और कँटीले वन्य मार्गों पर अपने कमलवत् चरणो को सुदीर्घ काल तक अग्रसर कर सकेंगे। निराहार और तृषित रहने की क्षमता आप मे है ही नही। गहन कन्दराओ के तिमिर से भयभीत हो जाने वाले अपने मन को किस प्रकार आप साधना मे स्थिर कर पायेंगे ? इस मार्ग पर सचरण का आपका सकल्प दुस्साहस मात्र होगा—यह आपके वश का कार्य नही और इस ओर सफलता की अभिलाषा केवल मृग तृष्णा ही है। हे स्वामी ! मेरे कथन पर ध्यान दीजिए और इस काल्पनिक सुख के लिए उपलब्ध सुख-सुविधाओ का परित्याग मत कीजिए। पिताश्री के आश्रय मे आपको कोई अभाव नही है। अपार वैभव और सुख-सुविधाएँ आपकी सेवा मे रहकर कृतकृत्य हो जायगी।

समुद्रश्री के इस कथन को जम्बूकुमार दत्तचित्तता के साथ सुनते जा रहे थे, उस पर विचार करते जा रहे थे। तभी समुद्रश्री के आगामी कथन ने उन्हे तनिक सजग कर दिया। समुद्रश्री ने कहा कि यदि इस चौराहे पर आकर आपने उपयुक्त मार्ग को नही चुना, तो आप भी वर्तमान सुखो से वंचित होकर बग किसान की भाँति ही पछतावे के शिकार होकर रह जायेंगे, क्योकि लक्ष्यित सुख की प्राप्ति आपके लिए सम्भव प्रतीत नही होती। बग किसान का सन्दर्भ आने पर जम्बूकुमार के मन मे एक कुतूहल उत्पन्न हुआ। बग का वृत्तान्त जान लेने की उत्सुकता से उन्होने समुद्रश्री से प्रश्न किया कि यह वंग किसान कौन था ? उसके

पछतावे की कहानी क्या है ? जम्बूकुमार की रुचि देखकर समुद्रश्री का आत्मविश्वास अभिवर्धित हो गया। और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न नवीन उत्साह के साथ उसने बग किसान की कथा आरम्भ की—

हे स्वामी ! मैं उस काल की चर्चा कर रही हूँ जब थली प्रदेश मे जल का बडा सकट था। कूए खोद-खोद कर किसान थक जाते किन्तु बूँदभर जल भी प्राप्त नही होता जलाभाव के कारण इस क्षेत्र मे कृषि की बडी ही दुर्दशा थी। सिंचाई के अभाव मे वहाँ वर्ष मे केवल एक ही फसल पैदा हुआ करती थी। मोठ, बाजरा आदि मोटे अनाज ही थली प्रदेश मे होते थे और वहाँ के निवासियो का जीवन बडा नीरस था। नव-नवीन खाद्यो की उनकी लालसा तृप्त नही हो पाती थी। इसी थली प्रदेश मे युगो पूर्व एक किसान रहता था, जिसका नाम बग था। बग का अपना भरा-पूरा परिवार था। पत्नी, बच्चे भाई, बहन, माता-पिता सभी स्वजनो के साथ वह इस क्षेत्र मे उपलब्ध समुचित सुखो से पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। थली के अन्य निवासियो की अपेक्षा उसे अपने जीवन मे अधिक अभाव अनुभव हुआ करता था। इसका मूल कारण यह था कि उसका विवाह थली से बाहर अन्यत्र ऐसे प्रदेश मे हुआ था जहाँ समृद्ध कृषि का वरदान प्राप्त था। अपने श्वसुर के प्रदेश से उसका सम्पर्क था और वह इस प्रकार वहाँ के विभिन्न खाद्यो के सुस्वाद से परिचित हो गया था, जिनकी उपलब्धि उसे अपने परिवार मे नही हो पाती थी।

एक समय का प्रसग है कि वग अपने श्वसुरालय गया हुआ था। उसने इस क्षेत्र मे भाँति-भाँति की फसलो को लहलहाते देखा और उसका मन प्रफुल्लता से भर उठा। उसने कई कृषि क्षेत्रो मे एक विशेष फसल देखी। बाँस जैसी लम्बी-लम्बी छड़ियाँ लम्बी-लम्बी पत्तियो से शोभित थी। उसने यह भी देखा कि इन छड़ियो को कोल्हू मे पेर कर उनका रस निकाला जा रहा है और उस रस को बड़े-बड़े कड़ाहो मे उबाला जा रहा है। चारो ओर एक मादक, मीठी गन्ध उड़ रही थी। जब वग अपने श्वसुर के खेत पर पहुँचा तो उसे वहाँ भी यही दृश्य देखने को मिला। उसके साले ने उसे वह मीठा रस पिलाया—वग बड़ा प्रसन्न हुआ। मीठा, ताजा, गुड़ खाकर उसे विशेष आनन्द का अनुभव हुआ। उसका मन लालायित हो उठा कि वह अपने खेतो मे भी यह फसल बोए। फिर तो वह सर्वदा ही इस सुख की प्राप्ति करता रह सकेगा। वह कुछ समय तक तो सकोच से ग्रस्त रहा कि इस फसल के विषय मे पूछ-ताछ करने पर उसे अपनी अल्पज्ञता के कारण उपहास का पात्र बनना पड़ेगा, किन्तु अपनी उत्कट आकाक्षा का दमन भी वह कब तक करता। अन्तत. उपयुक्त अवसर पाकर उसने अपने साले से सब कुछ ज्ञात कर लिया। उसे बताया गया कि यह ईख है और इसकी गाँठो मे ही इसके बीज निहित रहते हैं। इसी के रस से गुड, चीनी आदि का निर्माण होता है जो समस्त मिष्ट व्यजनो के लिए आधार है। इस जिज्ञासा-तृप्ति ने उसके मन मे बसी ईख की खेती करने की अभिलाषा को और अधिक बलवती बना दिया। निदान वह

शीघ्र ही स्वग्राम लौट आया और आते समय वह अपने साथ बोने के लिए ईख का एक भारी गट्ठर भी ले आया था ।

वग ने मार्ग मे देखा कि उसके ग्रामवासियो के खेतो मे बाजरे और मूंग-मोठ आदि की फसल लहरा रही है। उसने किसानो को बुला-बुलाकर नई फसल ईख के विषय मे बताया, उसके रस और रस से बने गुड की मधुरता से उन्हे परिचित कराने लगा। उसने कहा कि अब तक हम लोग बाजरे की खेती मे व्यर्थ ही समय और शक्ति का दुरुपयोग करते रहे है। आओ, अब हम ईख की खेती करें। बाजरे जैसी फसल मे धरा ही क्या है। छोड़ो इस खेती को और लो, मैं तुम्हे गन्ने के बीज देता हूँ— यह मीठी फसल उगाओ और जीवन का आनन्द भोगो। काट फैंको इस अधपकी बेकार की बाजरे की फसल को। उसकी बात पर किसी ने कान नही दिया। भावी, अनिश्चित लाभ की आशा मे कौन हाथ मे आयी सम्पदा को जाने देता है। अन्य किसान ऐसी जोखिम उठाने की मूर्खता क्यो करते। वग को इन लोगो की नादानी पर बड़ा तरस आया। वह इन किसानो को अपने पक्ष मे करने की इस विफलता पर खिन्न हो उठा और सोचने लगा कि मेरे खेत तो मेरे अपने है। उनमे बोने से मुझे कौन रोकेगा। फिर जब मेरे खेत की ईख गुड उगलने लगेगी तो ये मूर्ख अपनी भूल पर पछतायेंगे।

अपने घर पहुँचकर उसने स्वजनो से सारी बात बताई और आग्रह करने लगा कि आज ही बाजरे की फसल से खेतों को

खाली कर ईख बो दी जाय। बग के परिवार वाले उसकी उतावली से परेशान हो उठे। माता-पिता ने उसे समझाया कि बेटा माना कि तुम जो फसल बोना चाहते हो वह बहुत अच्छी है, मगर उसे बोने की इतनी शीघ्रता भी क्या है। बाजरा कुछ ही दिनो में पक जायगा, उसे काटना ही है। उसके बाद तुम खेत मे ईख बो देना। कुछ ही समय की प्रतीक्षा तो करनी है। किन्तु बंग पर किसी के भी प्रबोधन का कोई प्रभाव नही हुआ। वह तो तुरन्त ही ईख बो लेना चाहता था। वह मधुर रस और गुड़ के सेवन की घड़ियो को कैसे आगे खिसकने दे सकता था!

वग निश्चय ही बुद्धिमान था, किन्तु साथ ही वह दुराग्रही भी परले सिरे का था। जो वह एक वार सोच लेता, उसे शीघ्र ही कर लिया करता था, आगा-पीछा सोचना उसके स्वभाव मे नही था। अत. उसने परिवार वालो की असहमति की तनिक भी चिन्ता न करते हुए खेत मे ईख वोने का पक्का निश्चय कर लिया। सवके विरोध करते-करते भी बग नेअपने खेतो मे से बाजरे की फसल को काट-काटकर फेकना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखने सारा खेत चौपट हो गया। घरवालो को उससे बडा दु ख हुआ, किन्तु भावी सुख की कल्पना मे निमग्न बग बड़ा उल्लसित था। उसने अत्यन्त स्फूर्ति के साथ सारे खेत को जोत कर तैयार कर दिया और उसमे ईख बो दी। तब उसने सन्तोष की साँस ली और उसके मन चक्षुओ के समक्ष उसका यह नग्न खेत देखते ही देखते गन्ने की ऊँची फसल से विभूषित हो उठा। उसकी जीभ मीठे गुड के स्वाद का आनन्द लेने लगी। खेतो की मेडो पर

भट्टियाँ सुलगने लगी और उस पर चढे विशालकाय कडाहो मे उबलते रस की भाप उठने लगी। वग की नासिका उस मधुर सुवास से सिक्त हो उठी। किन्तु उसका यह सुख-स्वप्न अधिक काल तक सुरक्षित न रह सका। कठोर यथार्थ मे टकरा कर उसकी कल्पनाएँ चकनाचूर होने लगी। ईख को आवश्यकता थी सिचाई की, और जल की एक बूंद भी उपलब्ध नही हो पा रही थी। खेत की मेडो पर पडे अधपके बाजरे के पौधो के साथ-साथ बग का हृदय भी मुरझाने लगा। किन्तु वग ने हिम्मत हारना तो सीखा ही नही था। वह बडा परिश्रमी एव अध्यवसायी था। उसने कुआ खोदना आरम्भ किया, किन्तु उसे जल के स्थान पर निराशा ही हाथ लगी। एक-एक करके उसने कई कुए खोदे, किन्तु किसी ने भी जब जल नही दिया तो विवशता के कारण उसके नेत्र सजल हो उठे। खेत मे बोये गये ईख के बीज अकुरित होने के स्थान पर जलाभाव के कारण नष्ट होने लगे। अब बाजरे के सूखे पौधे पवन से खडखड़ा कर मानो बग की जल्दबाजी पर उसकी हँसी उडाने लगे। उसके खेत के समीप होकर जाने वाले अन्य किसान भी बग की मूर्खता पर कुटिल हँसी हँस देते थे। उसके परिवार वाले उससे भला क्या कहते ! उनका मौन ही वग के लिए असहनीय उपालम्भ हो गया था। वह अब पछताने लगा कि ईख की खेती तो नही हो पायी, इसके विपरीत बाजरे की फसल भी खो दी। गुड तो दूर रहा अब तो बाजरे की रूखी रोटी और मोठ की दाल भी अनुपलब्ध हो गयी। सारे परिवार के लिए भूखो मरने की स्थिति-आ गयी। अब तो भूल को सुधारा भी

नही जा सकना था, उसका दण्ड अनिवार्य हो उठा था। वग का मन अपनी भूल पर हा-हाकार करने लगा।

उपर्युक्त कथा समाप्त करते-करते समुद्रश्री विजय के गर्व से भर उठी। उसकी उन्नत ग्रीवा इसकी साक्षी थी। उसका अनुमान था कि उसने जम्बूकुमार को निस्तेज कर दिया है और उसे अव अवश्य ही जम्बूकुमार को उसके निश्चय से च्युत कर देने का श्रेय प्राप्त हो जायगा। कुछ ही क्षणो मे जम्बूकुमार ने अपना मौन त्यागते हुए समुद्रश्री से कहा कि प्रिये! वड़ी सुन्दर कथा तुमने सुनाई। अब तनिक यह भी स्पष्ट कर दो कि इस कथा के माध्यम से तुम किस तथ्य को प्रतिपादित करना चाहती हो? तुम्हारा प्रयोजन क्या है?

समुद्रश्री फिर से नवीन उल्लास के साथ बोली कि स्वामी! जो व्यक्ति भावी सुखो की कल्पना मे इतना खो जाता है कि इस का निर्णय भी न कर पाए कि उस सुख को प्राप्त करने के लिए जिस प्रयत्न की आवश्यकता है, उसकी क्षमता भी उसमे है अथवा नही— वह उस नवीन सुख के लिए विद्यमान और सहज सुलभ सुखो को त्याग कर पछताता है। उसके उपलब्ध सुख भी छूट जाते है और अक्षमता के कारण उसकी कल्पना के सुखो की असम्भवता तो बनी ही रहती है। वह कही का नही रह जाता। अत हे स्वामी! आपको भी बग के पछतावे से सीख लेनी चाहिए और अनिश्चित भावी सुखो के लिए उपलब्ध सुखो का परित्याग नही करना चाहिए। भ्रान्तियो के चक्रव्यूह से स्वय को मुक्त कीजिए और अपना तथा हमारा जीवन सुखमय कीजिए। इसी मे आपकी विवेकशीलता प्रमाणित हो सकेगी।

४ : सुख-लोलुप कौए की कथा : जम्बूकुमार द्वारा निराकरण

पत्नी समुद्रश्री के मन्तव्य का जम्बूकुमार पर तनिक भी प्रभाव नही हुआ। उनका विरक्ति का भाव और अधिक प्रबल हो उठा। उन्होंने उस उपलब्ध सुख की चर्चा की, जिसके वरण को समुद्रश्री ने श्रेयस्कर बताया था और कहा कि हे प्रिये ! ये सुख प्रवञ्चना के अतिरिक्त कुछ भी नही हैं। इन विषयो मे सुख का भ्रामक आभास मात्र होता है, ये यथार्थ आनन्द के साधन नही है। उनका बाह्य रूप बडा मोहक प्रतीत होता है, किन्तु इनके भीतर विषम दुखमयता छिपी रहती है। जब यह बाह्य आवरण उतर जाता है तो पीड़ा दायक विषय अपने कठोर पाश मे व्यक्ति को ऐसा जकड़ लेते हैं कि वह छटपटाता रह जाता है, विवश हो जाता है। दु ख ही उसका प्रारब्ध हो जाता है, ऐसा अनन्त दु ख कि जिसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर निकल आना फिर मनुष्य के वश मे नही होता। अत हे सुमुखी ! सुनो—यह तुम्हारा भ्रम है कि जागतिक सुखो को न त्यागने मे ही विवेकशीलता है। वस्तुतः विवेकशीलता तो इसमे है कि इन छद्म-सुखो (तथाकथित) की प्रवचना से जितना शीघ्र सम्भव हो छुटकारा पा लिया जाय। विवेकशीलता इसमे है कि मनुष्य अनन्त और वास्तविक सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे, साधना के प्रति उन्मुख हो। सुनो

समुद्रश्री ! मैं अपने इस कथन को एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट और पुष्ट करता हूँ ।

बहुत समय पूर्व एक सघन वन मे एक बलिष्ट और मदोन्मत्त हाथी निवास करता था । वानस्पतिक वैभव से सम्पन्न उस कानन मे गजराज को बिना ही विशेष परिश्रम के आहार की सहज उपलब्धि हो जाया करती थी । अति स्वच्छ, शीतल पवन के स्पर्श से वह पुलकित रहा करता था । मनोनुकूल वनस्पतियो का आहार करके स्वच्छ सरोवर का शीतल जल पी लेने पर हाथी को जब तृप्ति की अनुभूति होने लगती तो वह घोर स्वर के साथ ऐसा चिंघाडने लगता था कि समस्त वन-प्रान्त ही काँप उठता था । दिशाएँ प्रतिध्वनियो से भर जाती थी । साधारण वन्य प्राणी बेचारे थरथराने लगते थे । इस गजराज को अपनी विशाल काया और शक्ति का बडा दर्प था और वन के पशु-पक्षी सदा भय के मारे उससे दूर ही रहा करते थे । वे उसकी परछाई से भी आतकित रहते थे ।

समुद्रश्री ! जीवन तो नश्वर है । जो जन्म लेता है, एक दिन अवश्य ही उसे मृत्यु का ग्रास होना पडता है । परम बलवान प्राणी भी मृत्यु पर विजय प्राप्त नही कर सकता—यह ध्रुव सत्य है । जम्बूकुमार ने कथा को अग्रसर करते हुए कहा कि एक दिन उस गजराज की इहलीला भी समाप्त हो गयी । मदमाती गति वाला वह विशाल शरीर अब स्पन्दनहीन हो, भूलुण्ठित था । हाथी की मृत्यु से पशु-पक्षियो को बडी राहत मिली । अभयपूर्वक उन्होने पहली बार चैन की साँस ली । उनके मुक्त विचरण के लिए

यह बाधा अब दूर हो गयी थी। वे दुर्बल प्राणी अपने भय के उस कारण को देख लेने की कामना से एकत्रित हो गये। उनके कोलाहल से वन गूंज उठा।

ध्यान से सुनना समुद्रश्री इस कथा को—जम्बूकुमार ने पत्नी को सावधान करते हुए कहा कि इन हजारो पक्षियो मे एक कौआ भी था। जब तक वह हाथी जीवित था—कदाचित यही कौआ उससे सर्वाधिक डरा करता था। अब अपने आश्रय-स्थल ववूल की डाल से उडता हुआ आकर वह हाथी के शव पर बैठ गया। कुछ ऐसी अकड के साथ उसने अपनी गर्दन को ऊँचा किया, मानो उसे इस बात का अभिमान हो रहा हो कि उसने ही अपने पराक्रम से इस हाथी का वध कर वन्य पशु-पक्षियों को भययुक्त कर दिया है। तब सहसा ही उसने अपनी पैनी चौच हाथी के माँस मे गढा दी और शक्ति लगाकर शव का कुछ माँस नोच लेने मे वह सफल हो गया। बडे स्वाद के साथ वह उसे खाने लगा। अव से पहले कभी उसे हाथी का शव नही मिल पाया था। अत उस दिन उसे आहार मे विशेष रस आने लगा। वह इस अपार सुख मे निमग्न हो गया और सतत रूप से उदर-पूर्ति करता रहा। कुछ दिन इसीप्रकार व्यतीत हो गये। कौआ इस सुख मे कुछ ऐसा खो गया कि उसे अपने आस-पास के जगत् का भी कुछ ध्यान नही रह गया। अब तो यह हाथी का शव ही उसका आहार भी था और यही उसका निवास-स्थान भी।

हुआ ऐसा समुद्रश्री, . .कुछ क्षण मौन रहकर जम्बूकुमार पुन कहने लगे कि तभी यकायक ही आकाश घनघोर मेघो से

घिर गया और बूँदाबाँदी आरम्भ हो गयी। बिजलियाँ चमकने लगीं, मेघो की घोर गर्जना होने लगी। मेघ मानो क्रुद्ध हो गये थे और अब मूसलाधार वर्षा होने लगी। पर्वतो से बहकर पानी आने लगा और उसके साथ यह हाथी का शव भी बहने लगे। अब भी कौआ अपने भोजन के स्वाद मे खोया रहा। कभी-कभी वह आस-पास भी दृष्टि डाल देता था। उसे लगने लगा जैसे किसी विशाल जलपोत्त पर वह यात्रा कर रहा है। हाथी का शव पानी के साथ बहते-बहते एक बड़ी नदी मे पहुँच गया जो उसे तेजी से बहा ले गयी। अब भी कौआ सचेत नही हुआ। उसे तो सुख का लोभ ग्रस्त किये हुए था। वह माँस नोचने मे ही लगा रहा। परिस्थितियो के परिवर्तनो से वह उदासीन रहा। यह शव अब नदी के साथ-साथ समुद्र से जो मिला और समुद्र मे वह काफी दूर तक भीतर पहुँच गया। अब तो भूतल से कौआ इतना दूर ....इतना दूर हो गया कि... ....। वह मूर्ख अब भी अपने लोभ से विमुख नही हो पा रहा था। हाथी का शव अब तक भारी हो गया था और वह समुद्र के जल मे डूबने लगा। अब तो कौआ तनिक सचेत होने लगा। प्राणो के सकट ने उसे झिझोड़ दिया था। आत्म-रक्षा के लिए जब हाथी के शव से वह उडा और आकाश मे कुछ ऊँचा उठकर आस-पास का दृश्य देखने लगा। उसे दूर-दूर तक कोई आश्रय-स्थल नही दिखाई दिया। कोई पहाडी, कोई वृक्ष, किनारा कुछ भी दृष्टिगत नही हुआ। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, जल-ही-जल था। अब तो उसे बडी चिन्ता होने लगी, किन्तु वह बेचारा करता भी क्या! अब तो उसे अपनी

सुख लोलुपता का कुफल भोगना ही था। वेचारा वह असहाय कौआ उड़ता रहा....उडता रहा ..दूर-दूर तक उड़ता रहा। एक क्षण के लिए भी उसके पखो को विश्राम नही मिला। अन्तत इस प्रकार कव तक वह उडता रह सकता था। वह थक कर चूर हो गया, किन्तु प्राण-रक्षा की लालसा उसे प्रेरित करती रही—वह उडता रहा। आखिरकार वह शिथिल और वेदम हो गया। वुरी तरह हाँफता हुआ वह समुद्र मे गिर पडा और एक मत्स्य ने उसे अपना आहार वना लिया।

समुद्रश्री को सम्वोधित करते हुए जम्बूकुमार कहने लगे कि तुम भली-भाँति समझ सकती हो कि इस मूर्ख कौए की इस दुर्दशा के पीछे यही कारण था कि वह प्राप्त सुखो को त्यागने का साहस नही कर सका। सुखोपभोग का लोभ ही उसकी मृत्यु का कारण वना। तुम वंग किसान के प्रसग से मुझे सीख लेने को कहती हो। परन्तु क्या मुझे इस मूर्ख कौए के प्रसग से सचेत होकर अपने भावी जीवन को सशोधित नही करना चाहिए। मेरा परामर्श तो यह है कि सुखो के आकर्षक छलावो को तुम भी पहचान लो और उन्हे असार मान कर त्याग दो। फिर तो अनन्त दु खो से तुम्हारा भी सामना नही होगा। तुम लाख कहो, मगर उस कौए की मूर्खता को मैं कैसे दोहरा सकता हूँ। ये सारे उपलब्ध सुख मुखौटे लगाये हुए हैं और मैंने इन मुखौटो मे छिपे दु खो के मुखडे देख लिए हैं। अव मैं इनके जाल मे ग्रस्त नही होऊँगा। मुझे तो अनन्त और वास्तविक सुख की साध है—उसी की प्राप्ति मे अब शेष जीवन-यात्रा लगी रहेगी। समुद्रश्री !

तुम जिन्हे मेरे लिए उपलब्ध सुख समझ रही हो वे मुझे सन्तोष भी तो नही दे सकेंगे। एक सुख की अभिलाषा पूर्ण होते-होते अन्य अनेक अभिलाषाओ को जन्म देगी। मेरा मन इन प्रवचनाओ के हाथ का खिलौना बन जायगा और यत्र-यत्र भटकता रहेगा। और मेरे लिए उपलब्धि के नाम पर शून्य ही रहेगा। मैं एक बार जब इस चक्र से मुक्त हो गया हूँ तो पुनः स्वयं को इसमे ग्रस्त नही होने दूंगा। अपनी आत्मा का सुख और उत्थान की यदि तुम्हे कामना है तो समुद्रश्री, मैं तुम्हे भी इस छलावे से दूर रहने की सम्मति दूंगा। इसी मे मेरा, तुम्हारा, सभी का मगल है।

जम्बूकुमार के कथन के समाप्त होते-होते समुद्रश्री का मन अभिभूत हो उठा। उसे अपना दृष्टिकोण सारहीन प्रतीत होने लगा और जम्बूकुमार का एक-एक शब्द उसके मानस मे जमने लगा। भावाकुल समुद्रश्री जम्बूकुमार के समक्ष नतमस्तक हो गयी और गद्‌गद स्वर मे कहने लगी कि हे स्वामी! आपने मेरी आँखें खोल दी है। विवेकशील मनुष्य को वास्तविक सुखो की साधना ही करनी चाहिए और ये सासारिक सुख उस मार्ग मे बाधक बनते है, इनसे पीछा छुडा लेना ही उत्तम है। मैं आपके मार्ग मे प्रलोभन की दीवार खडी करूं—यह सर्वथा अनुचित है—मैं इसे भली-भाँति समझ गयी हूँ। आपने मेरी सोई आत्मा को जगा कर मुझ पर बडा उपकार किया है, स्वामी! समुद्रश्री ने अपने पति की अनुगामिनी बनने का भी निश्चय कर लिया।

५ : रानी कपिला की कथा · पद्मसेना का प्रयत्न

जम्वूकुमार की धारणाओ और सज्ञानता से समुद्रश्री तो प्रभावित हो गयी, किन्तु समुद्रश्री की पराजय ने जम्बूकुमार की शेष पत्नियो के दुस्साहस को और अधिक उत्कट बना दिया। पद्मसेना को दृढ आत्मविश्वास था कि वह निश्चय ही अपने पति को ससाराभिमुख कर देगी। उसने अतुलित दर्प के साथ समुद्रश्री को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुझे लज्जा नही लगती, कुमार के विचारो का समर्थन करते हुए। हम लोगो के सामने ही बढ-बढकर बातें बनाना जानती है क्या ! चली थी स्वामी को उनके रास्ते के हटाने के लिए और हो गयी उनकी पिछलग्गू। धिक्कार है तुझे !! लेकिन समुद्रश्री, हमारे पतिदेव तेरे जैसी को ही अपने तर्कों से हरा सकते हैं। अब बारी मेरी है। देख अब मेरा लोहा ! मैं स्वामी को प्रीति के रंग मे रग कर ही दम लूंगी। अपनी बात मनवाना मैं खूब जानती हूँ।

पद्मसेना के इस अभिमान की कोई भी प्रतिक्रिया कुमार पर नही हुई। वे सर्वथा शान्त एव गम्भीर बने रहे। अपने मुख पर लटक आयी केश-लट को पद्मसेना अपनी गर्दन के एक झटके से पीछे उछाल कर कुमार से कुछ कहना ही चाहती थी कि उन्होने बीच ही मे अवरोध उपस्थित कर दिया। जम्बूकुमार ने अत्यन्त शान्त स्वर मे कहा कि पद्मसेना ! मैं तुम्हारे प्रति भी आदर का

ही भाव रखता हूँ। कहो, तुम क्या कहना चाहती हो ? यदि तुम्हारे कथन मे मुझे औचित्य प्रतीत होगा तो मैं अवश्य उसका समर्थन करूँगा और अपने आचरण को तदनुरूप ही ढालूंगा। मैं दुराग्रही नही हूँ। कुमार के कथन और उसकी शैली का पद्मसेना पर अद्भुत प्रभाव हुआ। वह स्वत. ही अतिशय नम्र हो गयी और कोमलता के साथ वह अपना मन्तव्य प्रकट करने लगी कि हे प्रिय स्वामी! मैं जीवन और जगत् से एक विशेष तत्व समझ पायी हूँ और चाहती हूँ कि आप भी मेरे इस अनुभव से लाभ उठाएं। मेरा अनुभव यह है कि महत्वाकाक्षाएँ मिथ्या है और लालसाओ की दौड भी व्यर्थ है। ये मनुष्य को व्यग्र, अशान्त और दुखी ही बनाती हैं। लालसाओ पर नियन्त्रण न करने वाला व्यक्ति तीव्र असन्तोष का आखेट होकर पछताता रह जाता है। आपके मन मे भी जो लालसा है वह एक दिन घोर दुख का कारण अवश्य बनेगी। अत आपसे मेरा अनुरोध है कि वर्तमान परिस्थिति से ही सन्तोष अनुभव करना सीख लीजिए। आप क्यो काल्पनिक स्थिति-प्राप्ति की लालसा को पाल रहे हैं ? आपकी मनोवृत्ति देखकर मुझे रानी कपिला की दुर्दशा का स्मरण आ रहा है जिसने लिप्साओ के आकर्षण मे पडकर अपना सर्वनाश ही कर दिया था। वह भी यह सोचती थी कि जो उपलब्ध है, वह पुराना है, नीरस है। वह सदा नव-नवीन की लालसा से ओत-प्रोत रहती थी। यही उसकी दुर्दशा का कारण था।

जम्बूकुमार ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की कि पद्मसेना यह कपिला रानी की क्या कथा है ? कौन थी वह और कौन-सी उसकी

लालसाएँ थी, जिहोंने उसका सर्वनाश ही कर दिया। तनिक विस्तार से इस प्रसग को स्पष्ट करो। पद्मसेना को एक अद्भुत गौरव का अनुभव होने लगा। कुछ पल मौन रहकर उसने अपने आत्म-विश्वास को फिर से सवार लिया और सयत स्वर मे कहने लगी—

हे स्वामी! सुनिये—मैं आपको रानी कपिला का वृत्तान्त सुनाती हूँ। कपिला एक विशाल और वैभवशाली राज्य की रानी थी। वह अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक तो थी, किन्तु रमणी-सुलभ सरलता का उसमे सर्वथा अभाव था। कपिला मे कुटिलता, प्रवचना आदि दुर्गुण ही नही थे, अपितु वह चरित्र-हीना भी थी। उसके मन सरोवर मे जो अनेक कुप्रवृत्तियाँ और पाप छिपे पडे थे वे लालसाओ की प्रचण्ड लहरे उठाते रहते थे। उसका पति राजा बेचारा बडा ही सज्जन, बड़ा ही सरल हृदय था। राजा कपिला के सौन्दर्य पर अनुरक्त था। उसका तन-मन अपनी प्रियतमा रानी पर सदा न्योछावर रहता था। रानी के इस अपार रूप के पीछे जो कुत्सित कुरूपता छिपी था—राजा को उसका आभास भी नही था। रानी राजा के साथ रहकर अब एक विशेष प्रकार की अतृप्ति का अनुभव करती थी। अपने पति का सग तो विद्यमान था, वर्तमान था और रानी उसमे नीरसता, ऊब और उकताहट महसूस करती थी। नवीन की खोज मे व्यग्र रहने वाला उसका मन किसी अन्य जन पर अनुरक्त हो गया था। छल-छद्म मे निपुण रानी कपिला ने अपने बाह्य आचरण मे इस बात की गन्ध तक नही आने दी। वह राजा के प्रति पूर्ववत् ही स्नेहशीला बनी रही और बेचारा राजा अपनी

प्रियतमा की इस लीला को समझ ही नही पाया। रानी की इस अभिनयशीलता पर वह अब भी न्योछावर हुआ जा रहा था।

इस छलनामयी नारी कपिला का मन जिस पर आ गया था—उसके विषय मे जानकर हे स्वामी! आप आश्चर्य मे पड़ जायेंगे। प्रभुत्वशाली, सर्वगुणसम्पन्न, समर्थ राजा की रानी होकर भी कपिला के पतित मन मे जिस अन्य पुरुष की मूर्ति विराजित थी, वह राजा का एक तुच्छ सेवक एक महावत था। नवीन-ही-नवीन की लालसा मे रानी ऐसी अन्धी हो गयी थी कि उसने जिसे अपना प्रीतिपात्र चुना था उसकी स्थिति और अपनी मर्यादा की तुलना भी वह नही कर सकी। इसमे उसे तनिक भी अनौचित्य की प्रतीति नही हुई।

राजा का रानी कपिला के प्रति प्रेम एक पक्षीय हो गया था। राजा की प्रीति मे तीव्रता ज्यो की त्यो बनी हुई थी, किन्तु रानी उससे मन-ही-मन उदासीन हो गयी थी। इधर महावत के साथ कपिला की जो प्रणय-लीला चल रही थी, उसमे दोनो ही पक्ष सक्रिय थे। रानी और महावत, दोनो ही परस्पर इस कदर अनुरक्त थे कि जब तक वे वियुक्त रहते छटपटाते रहते। बड़ी कठिनाई से दिन का समय वे व्यतीत करते और आकाश मे जब सध्या फूल जाती तो मानो कपिला के हृदय मे बसी महावत के प्रति प्रीति की लालिमा ही बिखर जाती थी। यह साध्य वेला प्रेमी युगल के के लिए मिलन का मगल सन्देश लेकर आती थी। दोनो अत्यन्त अधीरता के साथ मध्यरात्रि की प्रतीक्षा करने लग जाते थे। दिन भर क्रिया-सकुल रहने के पश्चात् देर रात्रि मे जब राजभवन मे

सर्वत्र शान्ति छा जाती, सभी निद्रामग्न हो जाया करते, तब भी रानी कपिला अपने शयन कक्ष मे उद्विग्नता के साथ चक्रमण करती रहती थी। वह अपने कक्ष के गवाक्ष से बार-बार चचलता के साथ बाहर झाँकती रहती। कभी अपने नेत्रो पर जोर डालकर वह रात्रि के मद्धिम प्रकाश मे दूर-दूर तक देख लेने का प्रयत्न करती। तनिक हताश होकर वह फिर कक्ष मे टहलने लगती और फिर बाहर झाँक लेती। उसकी यह आकुलता तब तक चलती रहती जब तक कि महावत का हाथी गवाक्ष के बाहर आकर रुक नही जाता था। महावत ने अपने हाथी को विशेष रूप से प्रशिक्षित कर रखा था। हाथी अपनी सूँड से रानी को गवाक्ष से उठाकर अपनी पीठ पर आसीन कर देता था और महावत तब रानी को अपने घर ले जाता। बेचारा राजा इस सब छद्मलीला से अपरिचित था। रानी और महावत प्रतिरात्रि इस प्रकार परस्पर मिलते थे। भाँति-भाँति की क्रीडाएँ करते रहते थे। राजा को लम्बे समय तक इन रगरेलियो की सूचना ही प्राप्त नही हुई। वह अपने प्रति रानी की एक-निष्ठता का ही विश्वास करता रहा और अपने निर्मल हृदय का अनुराग उस पर लुटाता रहा।

हे स्वामी! पद्मसेना ने पति को सम्बोधित करते हुए कहा कि प्रत्येक दुष्कर्मी अपने पाप को छिपाना चाहता है, किन्तु कभी-न-कभी भण्डाफोड़ होता ही है। रानी कपिला की प्रणयलीला भी इसकी अपवाद नही हो सकती थी। एक बार मध्यरात्रि के उपरान्त भी राजा कपिला के कक्ष मे विश्राम कर रहा था। मधुर वार्तालाप से वह रानी को आनन्दित करने का प्रयत्न कर रहा

था। रानी भी उसके प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करती जा रही थी। मधुर मुस्कान बार-बार उसके अधर पल्लवों पर प्रसारित हो जाया करती थी। किन्तु क्या उसका नेह-प्रदर्शन वास्तविक था? यह सब उसका निरा नाटक था। बडे कौशल से रानी ने अपने अनमनेपन और अरुचि को अनावृत नही होने दिया। अन्यथा उसके कान और ध्यान तो अपने गवाक्ष के बाहर लगे हुए थे। वह राजा की उपस्थिति के कारण बडी बेचैन थी, किन्तु करती, तो क्या करती? वह सर्वथा विवश थी। उसे यह सब कुछ ज्ञात हो गया कि हाथी अपने निश्चित समय पर आया भी और काफी प्रतीक्षा कर लौट भी आया। निराश कपिला ने निद्रा का अभिनय आरम्भ कर दिया। फलत राजा अपने शयन कक्ष मे चला गया। अब तक हाथी तो कभी का लौट चुका था, किन्तु रानी मिलन-सुख से स्वय को वचित कैसे रख सकती थी। वह स्वय ही पिछली रात्रि मे महावत के घर पहुँच गयी।

महावत भी रानी के अभाव मे उस समय अत्यन्त सन्तप्त था। असहनीय वियोगाग्नि मे वह तिल-तिल कर फुंकता जा था। जब उसने रानी को अपने समक्ष खडे देख तो उसकी कामान्धता क्रोधान्धता मे परिणत हो गयी। रानी के प्रति अनेक अश्लील वचनो का उच्चारण करते हुए महावत उसे एक लोह-श्रृखला से पीटने लगा। एक रानी अपनी राजधानी मे इस प्रकार अपमानित हो रही थी, किन्तु कपिला तो प्रेम की उन्मत्तता मे अपनी सारे मान-सम्मान-प्रतिष्ठा आदि को विस्मृत कर चुकी थी। फिर भी दैहिक पीडा को वह सहन नही कर पायी और

उसके मुख से चीत्कारे निकलने लगी। महावत का क्रोध इसमे और भी भीषण हो गया और अधिक शक्ति के साथ वह प्रहार करने लगा। यह सारा कोलाहल सुनकर एक प्रहरी महावत के घर के बाहर ठिठक कर खडा हो गया। उसे अनुमान लगाने मे विलम्ब नही हुआ कि बेचारी किसी अबला पर अत्याचार किया जा रहा है। सहायता की भावना उसके मन मे उमड पडी जिसने उसके पैरो को गति दी। वह घर के भीतर घुस गया और जो देखा उससे वह अवाक् ही रह गया कि अरे, यह तो हमारी राजरानी कपिलादेवी है। ये महावत के घर कैसे हैं ? महावत को उनके साथ ऐसा अभद्र व्यवहार करने का साहस कैसे हुआ ? कही ऐमा तो नही है कि ? अनेक प्रश्न उसके मन मे घुमडने लगे, अनेक कल्पित उत्तर भी तैरने लगे। वह बेचारा अल्पबुद्धि किसी निष्कर्ष पर पहुँच ही कैसे सकता था। उसके सामने तो एक अति विकट समस्या आ उपस्थित हो गयी थी कि अब उसे आगे क्या करना चाहिए। रानी को अपनी उपस्थिति का आभास कराने का साहस भी वह नही कर सका और दबे पाँवो वह घर से बाहर निकल आया था। किन्तु जो कुछ उसने देखा था, इसकी सूचना क्या उसे राजा को देनी चाहिए या देखी-अनदेखी कर जाना चाहिए—वह कुछ भी निश्चय नही कर पा रहा था। वह सोचने लगा कि अगर वह सूचना नही देता है तो उसकी स्वामिभक्ति की भावना को ठेस लगती है और यदि वह सूचना दे तो इस भय से वह आशकित था कि राजा उसके कथन पर विश्वास कर ही लेगा—इसका क्या ठिकाना है। संभव है राजा उसी से

रुष्ट हो जाय और उसे अपनी रानी को अपमानित और लाछित करने के अपराध मे प्राणदण्ड ही दे दे। किसी एक बात के कारण दूसरी बात को छोडने के लिए उसका मन तत्पर नही हो रहा था। इन दो विपरीत भावो मे उसके मन मे बड़ी देर तक संघर्ष छिडा रहा। अन्तत उसने एक मध्यम मार्ग निकाल लिया जिससे दोनो ही विरोधी बातो का एक साथ निर्वाह सम्भव हो गया। उसने एक विशेष प्रणाली के साथ राजा को इस सारी घटना से अवगत कराने का निश्चय कर लिया। इस समय उसके भाल पर शरद की पिछली रात मे भी पसीने की बूँदें छलछला आयी थी।

प्रात काल की सुखद वेला मे राजा जब अपनी राजसभा मे बैठा था, एक चर ने आकर बडे आदर के साथ उसे एक पत्र प्रेषित किया। पत्र का प्रारम्भिक वाक्य पढकर ही राजा क्रोधित हो उठा। एक हुकार के साथ यह मन ही मन सोचने लगा कि किसने मेरी प्राण-प्रिया रानी पर कीचड़ उछालने का यह दुस्साहस किया है। तुरन्त उसकी दृष्टि पत्र के अन्त मे पहुँच गयी। किन्तु प्रेषक के नाम-पते का कोई उल्लेख न पाकर वह अपने प्रतिशोध भाव को तुष्ट न कर पाने की विवशता के साथ मन-ही-मन कुढने लगा। उसके दांत भिचे के भिचे रह गये। अनाम पत्र पर भी न्यायशील राजा चुप्पी कैसे साध लेता! उसने पत्र को आद्योपान्त पढ लिया जिसमे वह सारा दृश्य अंकित था, जो कुछ प्रहरी ने गत रात्रि मे महावत के घर देखा। अन्त मे लिखा गया था कि यदि आपको इस पत्र के मिथ्या होने की आशंका

हो, तो रानी की पीठ को देख लीजिए। वहाँ आपको शृ खला के चिह्न मिल जायेगे जो आपकी शका को निर्मूल कर देंगे। अब राजा का अविश्वास आधा रह गया। वह तुरन्त राजसभा से निकल आया। उसने अपने क्रोध को विवेक से संयत किया और अपनी न्यायशीलता को उत्तेजित करने लगा। वह इस आरोप की परीक्षा कर वास्तविकता तक पहुँच जाना चाहता था।

कपिला रानी को जब सूचना मिली कि राजा उससे भेंट करने आ रहा है, तो वह राजा के इस असमय आगमन के कारण भावी अमगल की आशका से भयभीत हो गयी। वह अभिनय-कुशल तो थी ही। तुरन्त ही उसने स्वय को सँभाल लिया और अपने मुखमण्डल से भय की सारी रेखाएँ समेट कर एक मधुर हास विखरा दिया। मुस्करा कर उसने राजा का स्वागत किया। राजा ने भी अपनी आशका का आभास नही होने दिया। वह रानी के समीप जा बैठा और लुक-छिपकर उसकी पीठ की ओर देखने लगा। रानी ताड गयी और रहस्य की रक्षा के लिए वह नये-नये वहाने के साथ राजा के पास से उठकर जाने का प्रयत्न करने लगी। इससे राजा को अपनी आशका की पुष्टि होने लगी। अव तो एक ही झटके से राजा ने रानी की पीठ को वस्त्रहीन कर दिया। उस की पीठ पर कलंक-कथा अकित पाकर राजा प्रचण्ड क्रोध से धधक उठा।

अब उस अनाम पत्र की सत्यता सर्वथा सिद्ध हो चुकी थी। न्यायी राजा ने कपिला रानी और महावत दोनो को अपने राज्य से निष्कासित कर दिया। प्रेमोन्माद के कारण कपिला को इसमे

न अपमान का अनुभव हुआ, न लज्जा का और न ही वैभव से वञ्चित हो जाने का दुःख। वह तो निर्लज्जता के साथ प्रसन्न हो रही थी कि उसे अपने प्रियतम के साथ रहने का स्वच्छन्दतापूर्ण अवसर मिल गया है। महावत के लिए तो 'बिल्ली के भाग्य से छींका टूटने' की लोकोक्ति चरितार्थ हो गयी थी। दोनो ने उल्लास के साथ इस राज्य को त्याग दिया और अपने अनिश्चित गन्तव्य की ओर अग्रसर हुए।

प्रसन्न मन-वदन के साथ वे यात्रा करते रहे। दिन भर वे चलते रहते और रात्रि को किसी उपयुक्त स्थल पर विश्राम करते। इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हो गये। एक रात्रि की चर्चा है—कपिला और महावत किसी गाँव से दूर बने एक प्राचीन मन्दिर मे विश्राम कर रहे थे। दिन भर की थकान के कारण दोनो को नीद आ गयी थी। सहसा शोरगुल के कारण कपिला की नीद उचट गयी, किन्तु महावत अब भी गाढी नीद मे सो रहा था। कोलाहल तीव्र होता चला जा रहा था और समीप से समीपतर आ रहा था। नीद से उठी कपिला अभी इस नवीन परिस्थिति के विषय मे कुछ अनुमान नही लगा पा रही थी। किसी संकट मे न फँस जायँ, इस आशका से वह विचलित हो गयी और महावत को जगाने के लिए उसने हाथ आगे बढाया ही था कि एक धमाके से वह चौक गयी। उसने अपना हाथ वापिस खीच लिया। उसने देखा कि कोई भारी गट्ठर आँगन मे गिरा है। वह सावधान हो गयी। ध्यान मे देखने पर उसे पता चला कि कोई पुरुष भी उस गट्ठर के समीप खडा है। वह उठी और उसके पास

यह जानने को पहुँची कि यह शोर किस वात का है। इस पुरुष को देखकर कपिला इस पर मुग्ध हो गयी। उसका चंचल मन महावत से हट कर इस नये पुरुष पर मँडराने लगा। वह इस पर लट्टू हो गयी। उसके साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की उद्दाम उत्कण्ठा ने उनको उद्वेलित कर दिया और उसके नयनो मे लाल डोरे उतर आये। कपिला इस अपरिचित व्यक्ति को अपने पति रूप मे प्राप्त कर लेने को व्यग्र थी। उस व्यक्ति ने अपनी कहानी संक्षेप मे सुनाते हुए कहा कि मैं एक वहुत ही बुरा आदमी हूँ। चोरियाँ करना ही मेरा व्यवसाय है। अभी भी मैं समीप के गाँव से खूब धन चुरा कर लाया हूँ और घर वालो के जाग जाने के कारण आफत मे फँस गया हूँ। गाँव वाले मेरा पीछा कर रहे हैं। तुम मेरी रक्षा करो। कपिला ने तुरन्त ही एक युक्ति सोच निकाली। चोर भी उससे सहमत हो गया।

धन का गट्ठर चोर ने सोये हुए महावत के सिरहाने रख दिया और वह स्वय काफी दूर हट कर कपिला के साथ बैठकर बातें करने लगा। चोर ने चिन्ता व्यक्त की कि तुम्हारे पति को चोर समझ कर गाँव वाले पकड़ ले जायेंगे और'''। कपिला चोर की बात काटकर बीच ही मे बोल पड़ी कि नही''''नही'' यह मेरा पति नही है। यह मेरा अब कुछ भी नही है। मैं तो रानी हूँ और यह हमारे राज्य मे एक महावत था। इसके बाद उसने थोडे मे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसी समय शोर मचाती भीड मन्दिर मे घुस आयी। धन का गट्ठर देखकर लोगो को अपनी सफलता पर हर्ष हुआ। उन्होने चोर समझकर महावत

को अत्यन्त तिरस्कारपूर्वक झिझोड़कर उठाया और उसे बुरा भला कहने लगे। महावत अपनी सफाई देते हुए कहने लगा कि मैं चोर नही हूँ'' 'मै चोर नही हूँ। मैं तो एक पथिक हूँ और मेरी पत्नी वो''''वहाँ बैठी है। उससे पूछ देखिए''''। पूर्व इसके कि लोग कपिला से कुछ पूछते वह स्वय ही चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी कि इसे मत छोड़ो, पकड़ लो इसे। अपने आपको बचाने के लिए यह स्वय को मेरा पति कह रहा है। यही चोर है। मेरा पति तो मेरे साथ यह बैठा है। अब भला कौन एक सुन्दर स्त्री पर अविश्वास कर आशकित चोर पर विश्वास करता। निदान गाँव वाले महावत को पकड़ ले गये। कपिला का मार्ग अब साफ हो गया, निर्बाध हो गया। नवीन की उपलब्धि से उसका हृदय बड़ा हर्षित था। उसे इस बात की चिन्ता ही क्यो होने लगी कि उसको प्राणो से भी अधिक प्यार करने वाला वह महावत वेचारा फाँसी पर झुला दिया जायगा। उसे तो मतलब था—अपनी कामना-पूर्ति से।

प्रात काल होने पर चोर के साथ कपिला अपनी नयी यात्रा पर निकली। वह उसके साथ उसके घर जाना चाहती थी, किन्तु चोर उसे कहाँ ले जाता ? उसका अपना घर था ही नही। फिर भी वह चल पड़ा था और मन-ही-मन इस संकट से मुक्ति का उपाय खोजने लगा था। मार्ग मे एक चौडी नदी आयी। चोर ने कपिला से कहा कि तुम स्वय तो इस नदी को पार कर नही पाओगी। अब तो यही एक उपाय है कि तुम्हे कन्धे पर विठा कर तैरता हुए उस तट पर ले जाऊँ। कुछ क्षण मौन रहकर चोर ने अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए कहा कि ऐसा करते है कि पहले तुम

अपने आभूषण मुझे दे दो। मैं उन्हे उस पार रख आता हूं, फिर तुम्हे ले जाऊंगा।

हे कुमार! पद्मसेना ने फिर जम्बूकुमार को सम्बोधित कर तनिक सावधान कर दिया और कहने लगी कि कपिला तो चोर पर आसक्त हो गयी थी। उसने चोर के प्रस्ताव पर विचार भी नही किया और अपने समस्त आभूषण उसे दे दिये। चोर आभूषण लेकर नदी मे कूद पडा और तैरता हुआ उस पार चला। वह तट पर पहुँच गया, तो इस पार खड़ी कपिला सोचने लगी कि अब शीघ्र ही वह इधर आकर मुझे भी अपने साथ ले जायगा। किन्तु वह तो नदी के उस पार निकल कर आगे बढ़ने लगा। यह देखकर कपिला जोर से चिल्लाई—अजी तुम किधर चल पड़े? इस तरफ आकर मुझे उस पार क्यो नही ले जाते? चोर ने उत्तर दिया कि मैं अब तुमको लिवाने के लिए उस किनारे पर नही आऊँगा। मुझे तुम्हारे साथ नही रहना है। तुम्हारा क्या भरोसा? पहले तुमने राजा के साथ धोखा किया और उस महावत के साथ प्रेम-लीला करने लगी और अब उस महावत को भी तुमने धोखा दिया है। उसे मृत्युदण्ड दिलवाकर अब तुम मुझे फँसाना चाहती हो। तुम पर मै कैसे विश्वास कर सकता हूँ? कल तुम मुझे भी धोखा देकर किसी चौथे को अपना वना लोगी। नही, मैं ऐसी मूर्खता नही करूँगा। इस आशय का उत्तर देकर वह कपिला के आभूषण लेकर भाग चला।

कपिला ठगी गयी थी। वह अब न इधर की न उधर की, कही की नही रह गयी थी। वह अपने दुष्कर्मो पर पछताने लगी।

गये-नये की प्राप्ति की आकाक्षा से उसका मन शून्य होता तो स्वामी ! क्या उसे वह दुर्दिन देखना पडता। उसे राजा के यहाँ ही कौन सा अभाव था, किन्तु उसके मन मे सन्तोष कहाँ था ? इसी-लिए तो मैं कहती हूँ कि कुमार ! जो सुख आपको उपलब्ध है, उन्हे भोग कर सन्तोष धारण करो। नयी वस्तु को प्राप्त करने की आपकी कामना बडे दुखद परिणाम देगी और तब कपिला जैसी ही दशा आपकी भी हो जायगी। इस उपलब्ध को भी छोड़ दोगे और नवीन भी प्राप्त न हो पायेगा। अपने सकल्प पर फिर से विचार कर लीजिए और मेरी बात मानकर उस अनुपयुक्त और हानिकारक व्रत को त्याग दीजिए, ताकि आपको उसके दुष्परिणाम-स्वरूप फिर दुखी न होना पडे। पद्मसेना ने अन्त मे कहा कि कपिला की भूल की आप पुनरावृत्ति नही करे—इसी मे हम सबकी भलाई है।

❀

६ : मेघमाली और विद्युत्माली की कथा : जम्बूकुमार का प्रबोधन

पद्मसेना के मुख से रानी कपिला की कथा को कुमार बड़े ध्यान से, गम्भीरता के साथ सुन रहे थे। अतः पद्मसेना के मन मे विजय के विश्वास और उल्लास का होना स्वाभाविक ही था। वह कदाचित् इसी कारण प्रफुल्लित दिखायी दे रही थी। किन्तु उसकी भावना को आघात तब पहुँचा, जब कथा के समाप्त होते-होते जम्बूकुमार तनिक व्यग्य के साथ मुस्करा दिये। कुमार ने कपिला रानी की कथा के विषय मे अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए कहा कि प्रिये ! यह जो कथा तुमने कही वास्तव मे बड़ी पीडा-जनक है। बेचारी असहाय कपिला सहानुभूति की पात्र है। उसकी अन्तत हुई जिस दुर्दशा का, प्रिये ! तुमने वर्णन किया—उसका कारण यही नही था कि उसके मन मे सदा-सर्वदा नव-नवीन को प्राप्त करने की लालसा रहती थी। इसके कारण उसके चरित्र का पतन तो हुआ, किन्तु महत्वाकाक्षाओ और लालसाओ का सदैव यही परिणाम रहता है—यह विचार भी भ्रामक है। पवित्र लालसाओ के मगलकारी परिणाम होते है और दूषित लालसाओ से पतन होता है, दु:ख उत्पन्न होता है। कुमार ने और अधिक सयत होकर कहा कि पद्मसेना ! मै जिस चिर और वास्तविक सुख-प्राप्ति का अभिलाषी हूँ, उस लक्ष्य की समानता कपिला

के लक्ष्य से नही हो सकती । अत साध्य की पवित्रता साधना और साधनो की पवित्रता की द्योतक होती है और साधक का स्वरूप इसके विपरीत हो ही नही सकता । साथ ही लक्ष्य-प्राप्ति पर साधक को वे ही परिणाम मिलेंगे जो उस लक्ष्य से सम्भव है । अतः पद्मसेना तुम मेरे लिए व्यर्थ ही चिन्तित हो । मेरे अमगल की रचमात्र भी आशका तुम्हारे मन मे नही रहनी चाहिए ।

फिर सोचने का प्रसंग यह भी है, कुमार ने कोमलता के साथ पद्मसेना को सम्वोधित करते हुए कहा कि वह रानी कपिला के मन की कपट भावना ही थी, जिसने उसे दु ख, वेदना, असहायता आदि के अभिशापो से ग्रस्त कर दिया था । उसने धोखा दिया—पहले अपने पति राजा को फिर आपने प्रेमी महावत को किन्तु मेरे नवीन मार्ग मे ऐसी सदोषता है ही कहाँ ! मैं किसी के साथ कोई छल-कपट नही कर रहा हूँ । इसी कारण पद्मसेना—मैं कहता हूँ कि कपिला की भाँति अन्त मे मै भी पछताता रह जाऊँगा—ऐसी मूलहीन कल्पना करना अनुचित है ।

जम्बूकुमार ने पद्मसेना के मुख पर अकित भावो का क्षण मात्र मे ही अध्ययन कर लिया और पाया कि उसके मन मे उसका पूर्व-विचार ज्यो का त्यो है ।, अत कुमार ने पद्मसेना से कहा कि प्रिये ! तुम्हारा यह भ्रमपूर्ण विचार इसलिए पक्का हो गया है कि तुमने कदाचित् मेघमाली और विद्युत्माली का वह प्रसग नही सुना जिससे सयम का महात्म्य स्पष्ट हो जाता है । इस प्रसग से अनभिज्ञ पद्मसेना के मन मे जिज्ञासा का भाव जाग्रत हुआ और उसने यह कथा सुनने की इच्छा व्यक्त की ।

जम्बूकुमार ने कथारम्भ करते हुए कहा कि पद्मसेना ! कुण्ट नगर का नाम तो तुमने सुना ही होगा । एक समय इसी नगर मे मेघमाली और विद्युत्माली निवास करते थे । ये दोनो भाई थे और इनका जीवन अत्यन्त कष्टमय था । वंश परम्परा से ही ये ब्राह्मण-बन्धु दारिद्र्य के अभिशाप से ग्रस्त थे । भिक्षोपजीवी मेघमाली एव विद्युत्माली बडी कठिनाई से उदर-पूर्ति कर पाते थे । इनके पिता से इन्हे वसीयत मे कुछ मिला नही था और विद्यार्जन भी वे नही कर पाये थे । कुण्टनगर और समीपस्थ ग्रामो मे ये दोनो बन्धु भिक्षाटन करते और जो कुछ भी भिक्षान्न प्राप्त हो जाता, उसी पर उन्हे सन्तोप करना पडता था । इनकी अपोपित काया भी दुर्बल थी और मुख भी निस्तेज ।

जम्बूकुमार ने इन ब्राह्मणो का परिचय इस प्रकार देते हुए प्रसग को अग्रसर किया कि कहा जाता है कि इन दु खित जनो पर एक दिन एक विद्याधर को दया आ गयी और उनकी सहायता तो दोनो को मिली, किन्तु एक तो लाभान्वित हो सका और दूसरा लाभ से वचित रह गया । इसका कारण यह था कि एक सयम-निर्वाह मे दृढ था और दूसरा भाई असयमी था, उसकी दरिद्रता के कप्ट ज्यो के त्यो वने रहे । सुनो पद्मसेना ! हुआ यह था कि एक वार ये दोनो भिक्षाटन पर निकले थे । ग्रीष्म काल था और विद्युत्माली व मेघमाली निराहार भटकते-भकटते थक गये थे । ये दोनो निराश होकर एक सघन वृक्ष की शीतल छाया विश्राम करने लगे ।

दैवयोग से उस समय एक विद्याधर भी विचरण करते-करते उधर आ निकला। आतप-त्रस्त वह विद्याधर भी इसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। ब्राह्मण-बन्धुओ और विद्याधर मे परस्पर परिचय हुआ। इन भाइयो की कष्ट-कथा को सुनकर विद्याधर का हृदय द्रवित हो उठा। सहानुभूति के आवेग ने उसे इनकी सहायता करने को प्रेरित किया। करुणा भरे स्वर मे उसने उनसे पूछा कि बताओ, मै तुम लोगो की क्या सहायता कर सकता हूँ ?

इन भाइयो के जीवन मे यह प्रथम ही अवसर आया था, जब किसी ने उनकी स्वेच्छा से सहायता करनी चाही थी। वे हर्षित हो उठे, किन्तु तुरन्त यह निश्चय नही कर पाये कि वे क्या माँगे। सोच-विचार के पश्चात् एक भाई बोला कि यह आपकी महती कृपा है कि आप हमारे प्रति सहायता का भाव रखते है। अब हम आप से क्या माँगे ? आपसे यदि हम धन माँगे, तो प्रदत्त धन तो आखिर कभी-न-कभी तो समाप्त हो ही जायगा, और उसके पश्चात् हम पुन अभावो से घिर जायेगे। अत आप तो हमारी कुछ ऐसी सहायता कीजिए जिसका सुखद प्रभाव आजीवन बना रहे। आप से हमारी विनय है कि कोई विद्या हमे प्रदान कर दीजिए, जो हमारी योग्यता को स्थायी रूप से बढा दे और हम आजीविका अर्जित करने के योग्य हो जायँ। फिर तो हमारे जीवन मे सुखागम सुनिश्चित हो जायगा। हम निश्चिन्त हो जायेंगे। आपकी यह हम पर महान अनुकम्पा होगी।

विद्याधर इन दरिद्र बन्धुओ के इस बुद्धिमानीपूर्ण चुनाव से

बडा सन्तुष्ट हुआ और उसने उन्हे एक मन्त्र बताया। इस मन्त्र की साधना असम्भव तो नही थी, किन्तु श्रमसाध्य और तनिक कठिन अवश्य थी। पद्मसेना! उस विद्याधर ने वह ६ खण्डो वाला मन्त्र कैसे साधा जाता है—इसकी सारी विधि भी उन्हे समझा दी। इन मन्त्रो का छ. माह तक जाप करना था—इसमे तो कोई विशेष कठिनाई नही थी, किन्तु इसकी विधि का जो एक और अनिवार्य अग था, वह दुष्कर था। जाप प्रारम्भ करने के पूर्व मेघमाली और विद्युत्माली को चाण्डाल-कन्या से विवाह करना था और इस जाप-अवधि मे उनको ब्रह्मचर्ययुक्त दाम्पत्य जीवन भी व्यतीत करना था। तभी मन्त्रों को साधा जा सकता था। दारिद्र्य के बोझे तले दबे इन बन्धुओ ने सुख-प्राप्ति की आशा मे यह सब कुछ करना स्वीकार कर लिया।

दोनो भाइयो ने मन्त्रो का जाप प्रारम्भ कर दिया। उन्होने चाण्डालिनी से विवाह भी किया और दृढतापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का निर्वाह भी करने लगे। सयोग से जिस कन्या के साथ उन्होने विवाह किया था वह अद्वितीय रूपवती थी। आकर्षण और सम्मोहन तो उसके रोम-रोम मे बसा हुआ था। कमलदल से उसके विशाल और सुन्दर नेत्र सदा निमन्त्रण-युक्त रहते थे और उसके अग-प्रत्यग मे दर्शक को उन्मादी बना देने का प्रचुर सामर्थ्य था। ऐसी अवस्था मे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना स्वय मे ही एक तप था। वह जप भी चलता रहा और यह तप भी। कुछ माह तो यो व्यतीत हो गये, किन्तु विद्युत्माली दुर्बल निकला। असयम ने उसका व्रत खण्डित कर दिया। विद्युत्माली साधना के

मार्ग पर बीच ही मे भटक गया था। इसके विपरीत मेघमाली पूर्णत सयम से रहा। निर्बाध रूप से उसने जाप-अवधि पूरी कर ली। उसे मन्त्र सिद्ध हो गया। परिणामत वह अपार बुद्धि-राशि का स्वामी हो गया। उसकी विद्वत्ता का प्रभाव और यश दूर-दूर तक व्याप्त हो गया था। चाण्डाल-पुत्री के साथ उसने मात्र विवाह ही किया था, फलत उसके ब्राह्मणत्व को भी कोई ठेस नही पहुँची। यही नही उसकी गरिमा एव महिमा मे अभिवृद्धि ही हुई। उसके गुणो से प्रभावित होकर कुण्टनगर के राजा ने उससे अपनी राजसभा की श्रीवृद्धि की। सर्वत्र उसका सम्मान होने लगा और अपार सुख-प्रतिष्ठा के इस नये वातावरण मे उसका अतीत दैन्य उसे एक भूली हुई कहानी जैसा लगने लगा। नरेश मेघमाली की प्रतिभा और योग्यता से इतना प्रसन्न हुआ कि अपनी राजकुमारी का विवाह भी उसके साथ कर दिया। मेघमाली के दिन फिर गये थे। उसके जीवन मे अब सुख ही सुख था। और पद्मसेना! तुम समझ सकती हो कि सयम का ही यह सारा चमत्कार था। इसी संयम के अभाव मे विद्युत्माली को यह उन्नत स्थिति और सुखमयता उपलब्ध नही हो पायी। यही नही उसकी स्थिति और भी बिगड गयी थी। चाण्डालिनी के साथ ससर्ग के कारण उसे जाति से भी बहिष्कृत कर दिया गया था। उसकी बडी भारी प्रतिष्ठा-हानि हुई। अब वह दान का उपयुक्त पात्र भी नही समझा जाने लगा। दुर्दिन की भीषणता और कठोरता विद्युत्माली के लिए अब असह्य हो गयी।

यह कथा समाप्त करते हुए जम्बूकुमार ने पद्मसेना की ओर

निहारा। उसके श्रीहत मुखमण्डल पर मानसिक डगमगाहट के लक्षण झलकने लगे थे। इस उपयुक्त अवसर का लाभ उठाते हुए कुमार ने अपना दृष्टिकोण पुन व्यक्त किया। उन्होने कहा कि पद्मसेना ! तुम मुझे विद्युत्माली के मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दे रही हो, किन्तु मैं मेघमाली के मार्ग के लाभो को हृदयंगम कर चुका हूँ। सब कुछ समझ-बूझ कर मैं आत्म-हानि की ओर कैसे अग्रसर हो सकता हूँ। सयम और साधना का मैं वरण कर चुका हूँ। उसके विरोधी सासारिक सुखों को त्यागने पर मैं दृढप्रतिज्ञ हूँ। तुम भी भला मेरा अहित तो कैसे चाहोगी ! अतः तुम्हे चाहिए कि मेरे मार्ग मे अवरोध उपस्थित न करो। पद्मसेना ! यह एक खरा सत्य है कि सासारिक भोगो के प्रलोभन मे पडकर जो व्यक्ति अपने व्रत से डिग जाता है, संयम से च्युत हो जाता है उसके लिए लौकिक-पारलौकिक कोई भी सुख सुलभ नही हो पाता। वह पतन ही पतन की ओर जाता है। और जो असामान्य और वास्तविक सुख को, आत्मोत्थान को अपना लक्ष्य मान लेते है और तब ससम, आत्मानुशासन, साधना आदि का दृढ़ता के साथ पालन करते हैं, अनुरक्ति और मोह से मुक्त हो जाते हैं—उनके लिए यह लक्ष्य सुगम हो जाता है—वह लक्ष्य उसे प्राप्त हो जाता है। यही मानव जीवन की सार्थकता है, इसी मे जीवन की सफलता है।

जम्बूकुमार का कथन समाप्त होते-होते पद्मसेना का हृदय कुमार के विचारो से अभिभूत हो उठा था। उसका दर्प हिमखण्ड की भांति गलकर वह गया। मानसिक निष्ठा के साथ वह कुमार के विचारो का समर्थन करने लगी और उसको मन-ही-मन इस

कारण अनुताप भी होने लगा कि क्यो व्यर्थ ही मैने ऐसे शुभ कार्य से कुमार को विरत करने की चेष्टा की। पद्मसेना को स्वय अपना विचार मिथ्या लगने लगा था, उसका अब तक का विश्वास अब उसे भ्रम लगने लगा। वह विराग और सयम के महत्व को समझ गयी। उसने स्पष्ट शब्दो मे कुमार की धारणा का औचित्य स्वीकार किया और नतमस्तक हो गयी।

पद्मसेना स्वय भी कुमार का अनुसरण करने मे ही जीवन की सफलता अनुभव करने लगी। इस भाव ने कुमार की धारणा के प्रति उसके समर्थन को और अधिक सघन कर दिया, अगाध कर दिया।

□

७ क्षेत्रकुटुम्बी किसान की कथा ·
कनकसेना का प्रयत्न

पद्मसेना के गर्व को गलित होते देखकर जम्बूकुमार की अन्य पत्नी कनकसेना का चातुर्य उत्तेजित हो उठा। कनकसेना ने तीखे शब्दो मे पद्मसेना की हार के विषय मे अपना पूर्व विश्वास व्यक्त किया और कहने लगी कि स्वामी को गृहस्थ-धर्म मे प्रवृत्त करने का श्रेय तो मेरे ही भाग्य मे है, फिर भला पद्मसेना सफल हो ही कैसी सकती थी। मैं कुमार को देखते-ही-देखते उनके व्रत से हटा देती हूँ। कनकसेना यह कहती हुई कुमार के समक्ष आ उपस्थित हुई और प्रबोधन के स्वर मे बोली कि हे प्रिय स्वामी! तनिक मेरे कथन की ओर भी ध्यान दीजिए। यह सत्य है कि आत्मा की उन्नति एक श्रेष्ठ स्थिति है, किन्तु इस उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर क्या कोई एकबारगी ही पहुँच सकता है। क्रमश ही तो इस मार्ग पर एक-एक चरण अग्रसर हुआ जा सकता है। फिर आप सब कुछ त्याग कर अनायास ही उस स्थिति को प्राप्त कर लेने के अभिलाषी क्यो हो गये है ? आप तो विवेक-शील हैं—मुझे यह कहने की आवश्यकता ही प्रतीत नही होती कि इस प्रकार का दुस्साहस करने वालो को सफलता के स्थान पर, प्राप्त होती हैं—वेदना, निराशा और आत्मिक पीडा। मेरा मन्तव्य तो हे स्वामी! यही है कि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इतनी

आतुरता अनुपयुक्त है। उस प्रयत्न के लिए उपयुक्त अवसर भी आपके जीवन मे आयेगा, किन्तु उसके पूर्व अभी की स्थिति जो वर्तमान की है, उसका आग्रह तो गृहस्थ के प्रति ही है। आगामी स्थिति के आने पर तदनुकूल आचरण भी अपेक्षित रहेगा, उसके आगे का क्रम भी अबाध रूप से आता रहेगा और यही क्रमिक विकास है, जिसके चरम पर आप धैर्य को साथी बना कर ही पहुँच सकते हैं। यदि उतावली करके आप विना ही पहली सीढी पर चरण रखे उछल कर मन्तव्य तक पहुँच जाने का लोभ करेंगे, तो स्पष्ट है कि आप उस स्थान मे भी नीचे लुढक जायेंगे, जहाँ अभी आप है।

कुछ क्षण मौन रह कर कनकसेना एक वार फिर मे कुमार के मुख की ओर ताकने लगी। कुमार गम्भीरता के साथ कनकसेना के कथन की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं—ऐसा भाव उनकी मुखमुद्रा पर झलक रहा था। और अधिक रुचि लेते हुए कनकसेना ने फिर कहना आरम्भ किया कि हे स्वामी! एक बार एक किमान क्षेत्रकुटुम्बी ने भी इसी प्रकार एक ही वार मे अपार ऐश्वर्य का धनी होने का प्रयत्न किया था और परिणामत उसकी अतिशय कारुणिक दशा हो गयी। तव सब कुछ खोकर उसे हीन हो जाना पडा और अपने किये पर पछतावा करते रहना ही उसकी नियति रह गयी थी। जम्बूकुमार मौन रहे, किन्तु उनकी मुखमुद्रा मे ऐमा प्रश्न तैर उठा, जिसका आशय यही था कि वे इस पूरे वृत्तान्त को सुनने के अभिलाषी है। कनक सेना ने कथारम्भ करते हुए कहा कि क्षेत्रकुटुम्बी एक माधारण

किसान था, तथापि कृषि उपज उसकी आवश्यकताओ को देखते हुए पर्याप्त हो जाती थी। अत वह निश्चिन्त और सुखी था। परिश्रम से जी चुराना उसने सीखा ही नही था। दिन भर कठोर प्ररिश्रम करता और इस परिश्रम मे भी वह आनन्द का अनुभव किया करता था। खेती-बाडी के सारे काम-काज वह स्वय ही करता था। किसी दूसरे पर आश्रित रहना उसे नही भाता था। रात को खेतो की रखवाली का कार्य भी वह स्वय ही किया करता था। बडा मनमौजी जीव था वह। बस अपने काम मे ही उसका ध्यान रहा करता था।

खेतो मे बालियाँ पकने लगी थी। परिश्रम के फल की प्राप्ति समीप ही थी। ऐसे समय मे अधिक सावधानी की आवश्यकता हुआ करती है। क्षेत्रकुटुम्बी इससे अनभिज्ञ न था, अत रात भर जागकर वह फसल की रखवाली किया करता था। पशु-पक्षियो से अनाज को बचाना वह खूब जानता था। रातभर वह थोडे-थोड़े समय के अन्तराल से शख बजाता रहता था। पशु-पक्षी चौंके रहते और उसकी फसल की हानि नही होती। एक रात को उसके शख-निनाद का बड़ा अनोखा ही प्रभाव हो गया। वह किसान क्या से क्या हो गया!

हुआ ऐसा कि आस-पास के गाँवो से कुछ चोर अपार धन और पशुओ को चुरा कर ला रहे थे। अर्द्ध रात्रि के समय जब वे इसके खेत से कुछ दूरी पर होकर निकल रहे थे तो उन्होने उसके द्वारा की जाने वाली बार-बार की वह शख-ध्वनि सुनी। चोर भय-

भीत हो गये। उन्हे यह अनुमान लगाने मे विलम्ब नही हुआ कि गाँव वालों को ज्ञात हो गया है और उनका समूह शंख बजाता हुआ हमारा पीछा कर रहा है। अत आत्म-रक्षा के लिए सारे पशुओ और चोरी के धन को वही छोड़ चोर भाग खड़े हुए। इस प्रकार बड़ी भगदड मच गयी। पशु भी चीखने-चिल्लाने लगे और रात्रि के उस शान्त वातावरण मे क्षेत्रकुटुम्बी को ये असामान्य ध्वनियाँ सोचने के लिए विवश करने लगी कि आखिर माजरा क्या है ? इतने दूर से वह कुछ अनुमान नही लगा पा रहा था और उसकी उत्सुकता भी बढती जा रही थी। अत. निर्भीक क्षेत्र-कुटुम्बी उस दिशा मे बढा, जिधर से यह कोलाहल सुनाई दे रहा था। अविलम्ब ही वह घटनास्थल पर पहुँच गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा—यह देखकर कि वहाँ तो अपार धन पड़ा हुआ है और अनेक गाये, भैसे आदि पशु खड़े है। उसे सही स्थिति का अनुमान लगाने मे भी कोई देरी नही लगी कि यह सब कुछ चोर ही छोड़कर भाग गये है। वह चतुर तो था ही, अत यह निश्चय भी उसने तुरन्त ही कर लिया कि इस सब पर मुझे तुरन्त अधिकार कर लेना चाहिए। वैसे भी इसे छोड़ना व्यर्थ है—यह सोचकर वह समस्त धन और पशुओ को रात मे ही घर ले आया। तब तक सारा गाँव तो गाढी नीद मे सो रहा था और इधर क्षेत्रकुटुम्बी का भाग्य ही जाग उठा था। उसमे अनेक सद्गुण तो थे, किन्तु यह लोभ का दुर्गुण बडा प्रबल था, जिसके वशीभूत होकर ही इस सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने मे उसे तनिक भी अनौचित्य प्रतीत नही हुआ था। वह तो

वर्षों से यही चाह रहा था कि वह धनाढ्य बन जाय और जब एक ही रात मे लक्षाधिपति हो जाने का अवसर उसके हाथ आ गया तो भला वह उसे यो ही जाने कैसे देता !

तब के और अब के क्षेत्रकुटुम्बी मे बडा अन्तर था। अब क्षेत्रकुटुम्बी साधारण किसान नही रह गया था। अब तो वह वैभवशाली था, समृद्ध था। फिर भी अपने मूल कार्य को उसने नही छोडा था। खेती वह स्वय ही करता था। रात्रि को रख-वाली का काम भी करता था। अनायास ही इस किसान की स्थिति मे जो यह आश्चर्यजनक परिवर्तन आया, उसमे उस क्षेत्र के निवासियो को कुतूहल होता था। वे समझ नही पा रहे थे कि सहसा इतना धन क्षेत्रकुटुम्बी को कहाँ से हाथ लग गया। अधिकाशत तो यह चर्चा का ही विषय रहा करता था, किन्तु हे कुमार ! कोई-कोई प्रबल जिज्ञासु उससे इस विषय मे प्रश्न भी कर लिया करता था। प्राय ऐसे अवसरो पर क्षेत्रकुटुम्बी का एक ही आशय का उत्तर होता था कि भगवान की कृपा से ही मुझे यह सब प्राप्त हो सका है। अधिक विवेचन-विश्लेषण वह नही करता। किन्तु लोगो को उसके इस उत्तर पर विश्वास नही होता, क्योकि सब लोग जानते थे कि क्षेत्रकुटुम्बी अपनी गृहस्थी और खेती-बाडी के माया-मोह मे ही लगा रहता है। इसने ऐसी भक्ति कब कर ली कि भगवान इस पर इतने प्रसन्न हो जायँ। अत क्षेत्रकुटुम्बी को सन्देह की दृष्टि मे ही देखा जाता था। स्वय उसे भी इसका पूरा आभास था कि उसके कथन को सहज ही स्वीकारा नही जा सकेगा। अत लोगो की धारणा को झुठलाने के लिए और उनमे

अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने की दृष्टि से क्षेत्रकुटुम्बी ने अपने आचरण मे प्रत्यक्षत. परिवर्तन कर लिया। कुछ ही दिनो मे उसने गॉव मे एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। इस मन्दिर में वह नित्य कई-कई बार जाता। भजन कीर्तन होते, उनमे वह सम्मिलित होता, पूजा-आरती होती, प्रसाद वितरित होता। व्यवहार मे भी वह बहुत कोमल हो गया। परिणामत. लोगो का अविश्वास का भाव धीरे-धीरे कम होने लगा। क्षेत्रकुटुम्बी का पर्याप्त मान-सम्मान होने लगा और वह क्षेत्र का प्रतिष्ठित व्यक्ति समझा जाने लगा।

हे स्वामी ! जगत मे सत्य पर आवरण सदा-सदा के लिए नही रह पाता—यह कहते हुए कनकसेना ने इस सिद्धान्त का विवेचन किया कि प्रत्येक चातुर्य और कौशल को एक-न-एक दिन परास्त होना ही पड़ता है—जब समस्त आवरण हट जाता है और स्थिति अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हो जाती है। क्षेत्रकुटुम्बी के साथ भी यही घटित हुआ। उसके जीवन मे एक रात्रि ऐसी आयी थी जिसने उसे धनाढ्य बना दिया था और फिर एक रात्रि ऐसी भी आयी जिसने उसकी समस्त सम्पत्ति मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ छीन लिया। इस रात्रि मे भी वह अपनी फसल की रखवाली कर रहा था और शख फूंकता जा रहा था। सयोग से चोरो का वही समूह पुन उधर से निकला। इन लोगो ने पहले की ही भांति शखध्वनि सुनी तो चकित रह गये। इस बार किसी कारण की कल्पना करने का कोई आधार नही था। वे सोचने कि उस बार जब भयभीत होकर हम सारा धनादि छोडकर भाग

गये थे—तब भी सम्भव है किसी ने हमे ठग लिया हो। अब चोरो ने खोज प्रारम्भ कर दी कि शख कौन बजा रहा है। कुछ ही समय मे उन्हे इस रहस्य का पता चल गया और उन्होने इस किसान को शख बजाते देख लिया। चोरो के मन मे प्रतिशोध की अग्नि धधक उठी। दुष्ट मनोवृत्ति के तो वे थे ही। क्षेत्र कुटुम्बी को उन्होने नाना प्रकार से अपमानित किया और उसे निरादरपूर्वक घसीटते हुए अपने गाँव ले आये। चोर चाहते थे कि उनके जिस धन और पशुओ पर किसान ने अधिकार जमा रखा है, यह उन्हे लौटा दे किन्तु उसके मन मे तो लोभ समाया हुआ था। वह सीधे-सीधे कैसे तत्पर हो जाता! उसे एक स्तम्भ से जकड कर बाँध दिया गया। चोरो ने उसे नाना भाँति के शारीरिक कष्ट दिए। घोर यन्त्रणाओ को भी वह सहन कर गया, किन्तु वह सम्पत्ति लौटाने को राजी नही हुआ। लोभ क्या कुछ नही करा देता है! अन्त मे जब क्षेत्रकुटुम्बी को इस बात का विश्वास हो गया कि बिना धन लौटाये अब मेरे प्राणो की रक्षा नही होगी, तो वह विचलित हो गया। प्राणो का लोभ कदाचित् सर्वाधिक सशक्त होता है, जो अन्य सभी प्रकार के लोभो को निरस्त कर देता है। क्षेत्रकुटुम्बी भी विवशत सब कुछ इन चोरो को लौटा देने को तत्पर हो गया।

और अब कल का प्रतिष्ठित क्षेत्रकुटुम्बी आज दीन-हीन और रक किसान हो गया। पहले की स्थिति से भी अब वह बहुत नीचे हो गया था। जो मिथ्या शान और मान उसे उस चोरी के धन के साथ मिला था—वह उसी के साथ चला भी

गया। वह गाँव मे किसी को मुँह दिखाने योग्य भी नही रहा। बड़ी दुर्दशा हो गयी थी उसकी। अन्तत उसे वह गाँव छोडकर चले जाने पर विवश होना पडा।

अन्त मे कनकसेना ने कहा कि स्वामी! क्षेत्रकुटुम्बी का यह पतन, यह दुर्दशा इसी कारण हुई कि वह तुरन्त ही उन्नति के शिखर पर पहुँच जाना चाहता था। जो कुछ उसके पास था, उससे वह सन्तुष्ट नही था और क्रमश. वृद्धि होती चली जाय—यह भी उस अधीर के लिए अपर्याप्त था। इस उतावली के कारण ही उसको सब कुछ खो देना पड़ा और वह घोर दु खी होकर अपनी उस मनोवृत्ति पर पछताता रहा। कनकसेना ने पुन अपने पति को सम्बोधित करते हुए कहा कि स्वामी! आपके हित के लिए ही मैने क्षेत्रकुटुम्बी की यह कथा आपको सुनाई है। इससे अपने भावी जीवन का रूप निर्धारित करने मे सहायता लीजिए। मेरा विश्वास है कि आप क्षेत्रकुटुम्बी के समान अपने भविष्य को नही ढालना चाहेगे। आपका हित इसी मे है कि जो सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उन पर सन्तोष करें और क्षेत्रकुटुम्बी की भाँति एकदम ही कुछ-का-कुछ होने जाने की भ्रामक धारणा को त्याग दे।

अपना विवेचन समाप्त करते-करते कनकसेना की मुखश्री आसन्न सफलता के श्रेय से सयुक्त होकर दीप्तिमान हो उठी। उसने जम्बूकुमार पर अपने प्रयत्न से हुए प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उनकी ओर पुन दृष्टिपात किया और एक सन्तोष की साँस ली। कुमार की मुखमुद्रा अब भी पूर्ववत् निर्विकार ही थी। □

८. प्यासे बन्दर की कथा

कनकसेना का जम्बूकुमार द्वारा हृदय-परिवर्तन

कनकसेना को क्षेत्रकुटुम्बी किसान की कथा सुनाने के पश्चात् जिस सन्तोष की अनुभूति होने लगी थी—वह अब जम्बूकुमार की वाणी की धारा मे प्रवाहित होने लगी। जम्बूकुमार अत्यन्त सधे हुए स्वर मे कहने लगे कि कनकसेना! सुनो, तुमने मेरे विषय मे जो धारणा बना रखी है वह आधारहीन है। तुम कहती हो कि जो सुख मेरे जीवन मे उपलब्ध हैं, उन्ही पर मुझे सन्तोष धारण करना चाहिए और उन्नति के चरम पर पहुँचने की उतावली मुझे नही करनी चाहिए। इन सुखो का मुझे परित्याग नही करना चाहिए. . . आदि-आदि। किन्तु यथार्थ तो यह है कि जिन्हे तुम सुख बता रही हो वे मेरे लिए सुख है ही नही। ये विषय असार है, अस्थिर है और घोर दुःख के जनक है। भ्रमवश हम इन्हे आनन्द का कोष मानते हैं, किन्तु क्षण मात्र के लिए ये रस का केवल आभास करा पाते है, बस। अन्यथा इनके कारण जो दारुण कष्टो की स्थिति उत्पन्न होती है, वह अनन्त होती है। यह सब कुछ मैंने ज्ञात कर लिया है। तुम्हारे इन सुखो के भीतर मैंने झाँक कर देख लिया है और मैंने वहाँ घोर हाहाकार, दारुण चीत्कार तथा आहो और आँसुओ का व्यापार ही होते पाया है। अब ऐसी स्थिति मे उन त्यक्त सुखो की ओर

उन्मुख होना क्या मेरे लिए सम्भव रह गया है ! कनकसेना ! इन सुखरूपी छलावो से मुक्त होकर मैं वास्तविक सुख को प्राप्त करने की साध रखता हूँ, उस सुख को प्राप्त करने का मार्ग ही तो वह साधना है, जिसमे मैं प्रवृत्त होना चाहता हूँ।

जम्बूकुमार ने पुन कनकसेना को सम्बोधित करते हुए कहा कि यह मात्र मेरे लिए ही नही प्राणिमात्र के लिए सत्य है। यही वह ज्ञान है जिसे प्राप्त कर मनुष्य आत्म-कल्याण के लिए प्रेरित हो सकता है। इन सुखो के मिथ्या रूप मे न पडकर इनके परित्याग के लिए तत्पर रहने की प्रवृत्ति सभी के लिए मगलकारी रहती है—इसमे किसी को तनिक भी सन्देह नही करना चाहिए। स्पष्टोक्ति यह है कनकसेना ! कि तुम भी इन सासारिक सुखो के प्रवचनापूर्ण स्वरूप को, इनकी घोर दु खद परिणति को समझ नही पायी हो। इसे समझना तुम्हारे लिए भी हितकर होगा। सुनो, मै तुम्हे इसी उद्देश्य से प्यासे बन्दर की कथा सुनाता हूँ।

कनकसेना अब तक कुमार का अभिप्राय समझ चुकी थी और वह उसमे कुछ-कुछ यथार्थ का अनुभव भी करने लगी थी। इस सारे तथ्य को भली-भाँति हृदयगम कर लेने की कामना से वह दत्तचित्त होकर इस कथा का श्रवण करने लगी। कुमार ने कथारम्भ किया—

कनकसेना ! एक बहुत ही रमणीक सघन वन था। प्राकृतिक शोभा का कोष ही था वह। भाँति-भाँति के द्रुम-लतादि मे विभूषित इस कानन मे फल-फूलो की भी प्रचुरता थी। निर्मल जल से भरे सुन्दर जलाशयो और झरनो से वन का वैभव और

अधिक अभिवर्धित था। इन सुविधाओ के परिवेश के कारण वहाँ वन्य पशु-पक्षियो की भी अधिकता थी। प्रात-सायं सारा वन प्रान्तर नाना पक्षियो के कलरव से गूंज उठता था। स्वच्छन्द तितलियो की चचलता और भ्रमरो की गुजार से तो सभी का मन मुग्ध हो जाया करता था।

इस वन मे अन्य पशु-पक्षियो के साथ वानरो का एक समूह भी रहता था। सभी वानर यहाँ प्रसन्न थे, तृप्त थे। अभाव यहाँ किसी प्रकार का था ही नहीं। अत' इन वानरो का जीवन बड़ा सुखमय था। सभी परस्पर स्नेह से रहते—कलह का कोई कारण न था। घने वृक्षो की शाखाओ मे उछल-कूद करते रहते, मुक्त विचरण करते रहते। वानरो के इस सुख-शान्तिपूर्ण जीवन मे एक दिन एक बाधा उपस्थित हो गयी। विशाल डील-डौल का एक शक्तिशाली वानर किसी अन्य वन से आकर यहाँ बस गया। इसे अपनी शक्ति पर बडा गर्व था और वह अन्य वानरो पर शासन करना चाहता था। अत वह नित्य ही झगडे-बखेडे खडे करने लगा। कभी किसी वानर को तंग करता तो कभी किसी को। सारे वन की शान्ति इस एक नये वानर ने भग कर दी थी। इस वन के वानर भी बड़े दु खी हो गये थे। एक दिन सबने मिलकर उसे छकाने की ठान ली। खूब सघर्ष हुआ। दोनो पक्षो से घात-प्रतिघात का क्रम चलता रहा। आगन्तुक वानर यद्यपि शक्तिशाली था, किन्तु अकेला ही तो था और उसके प्रतिपक्षियो की सख्या अत्यधिक थी। अत अन्त मे उसे हारना ही पडा। अन्य वानरो ने उसे खदेडकर वन से बाहर भगा दिया और उसे ऐसा आतकित

कर दिया था कि भविष्य मे वह कभी इस वन मे प्रवेश करने का साहस न कर सके। वन मे पुन. शान्ति का साम्राज्य हो गया। वानर-जीवन मे पुन. सुखमयता लौट आई।

वह वलवान वानर भी कुछ समय इधर-उधर भटकता रहा और अन्त मे एक अन्य वन्य खण्ड मे उसने आश्रय ले लिया। इस नये वन मे भी वनस्पति का वैसे अभाव नही था, किन्तु पहले वाले वन की तुलना मे कुछ भी नही था। जैसे-तैसे इस वानर को अव इस नये वन मे ही जीवन विताना था। वह अपनी पराजय-जन्य वेदना को विस्मृत कर नवीन उद्योग मे व्यस्त रहने लगा। इस वन मे उसे अन्य कोई प्राणी दृष्टिगत नही हुआ। सारे वन पर मात्र उसी का अधिकार है—इस भावना से उसमे गर्व की अद्भुत अनुभूति जागी। इच्छानुसार फल-फूलो का सेवन कर वह अघा गया। तव उसे प्यास लगी और वह जल की खोज मे निकला। उसे यह जानकर बडा आश्चर्य होने लगा कि इस हरे-भरे वन मे आस-पास कही जलाशय आदि नही है। दूर-दूर तक उसने खोज लिया, किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। अब उसका कण्ठ प्यास के मारे सूखने लगा। तृषा असहनीय हो जाने के कारण वह थका होने पर भी जल की खोज करने लगा, किन्तु उस वन मे कही होता तभी तो उसे जल मिल पाता। सारी दौड-धूप व्यर्थ हो गयी।

तेज धूप के कारण उस वानर का कष्ट और अधिक बढ़ गया। उसके प्राण ही कण्ठ मे आ गये थे। वह बुरी तरह हाँफने

लगा। उसका सीना धौंकनी हो गया था। उसे पानी की सख्त जरूरत थी, और जरूरत थी कि पूरा होना ही नहीं चाहती थी। थककर वह वे-दम हो गया था और चलना-फिरना भी उसके लिए कठिन हो गया था। एक पेड तले छाया मे वैठकर वह सुस्ताने लगा। लेकिन प्यास की पीडा ने उसे वैठने नही दिया। वह फिर से पानी की खोज मे चल पड़ा। लडखड़ाते हुए वह वहुत दूर निकल गया। झाड़ी-झाडी उसने टटोल डाली पर पानी का कोई पोखर तक दिखायी नही दिया। वहुत भटक चुकने पर उसे एक सूखी तलैया मिल गयी। पानी तो एक बूंद भी नही था किन्तु कीचड़ मे कुछ नमी अव भी शेष थी। वह प्यास से दीवाना वानर आतुरता के साथ कीचड को चाटने लगा। और कनकसेना! तुम तो जानती ही हो कि इस प्रकार उस तृपित वानर की प्रचण्ड प्यास बुझ नही सकती थी। वाहर-भीतर के ताप से उसकी सारी देह दहक रही थी। इससे व्यग्र होकर वह वानर वेचारा उस अधसूखे कीचड मे लोटने लगा। उसका सारा शरीर लथ-पथ हो गया और उसे कुछ शीतलता का अनुभव भी हुआ। लेकिन यही क्षणिक शीतलता उसके लिए भयकर अभिशाप सिद्ध हुई। वह वानर पक से लिप्त होकर जव सूखी तलैया से बाहर आया तो कीचड की नमी शीघ्र ही तेज धूप से वाष्प बनने लगी। कीचड सूखने लगा और वह मिट्टी की पर्त सिकुडने लगी। परिणामत मिट्टी मे उलझे उसके शरीर के रोएँ खिचने लगे। असह्य पीडा से वेचारा वानर तडपने लगा। वडी ही दुर्दशा होने लगी थी उस वानर की।

वह सर्वथा असहाय था । खुले मैदान मे वह शिथिल होकर गिर पड़ा । तीर की तरह तीखी सूर्य की किरणे वरस रही थी । मिट्टी सूख-सूखकर और भी सिकुडने लगी और वानर की सारी त्वचा विदीर्ण हो गई । भयकर यातना भोगते-भोगते बेचारे उस वानर ने प्राण त्याग दिये । अतृप्त प्यास लेकर ही उसे विदा होना पडा । कैसा भीषण दु खान्त था उसके जीवन का—जिसकी कल्पना मात्र से ही सिहरन उत्पन्न हो जाती है ।

अन्त मे जम्बूकुमार ने कहा कि कनकसेना ! मेरा अनुमान है कि इस कथा के माध्यम से जो मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ तुम उसे समझ ही गई होगी । सासारिक सुख इस पक के ही समान तो है । कीचड़ चाटने से वानर को जो राहत मिली वह क्षणिक ही तो थी । उसी प्रकार ये कहे जाने वाले सुख क्षण भर के लिए रचमात्र-सा ही आनन्द का आभास कराते है और उनके पीछे जो विकराल विभीपिका छिपी है उसकी यातना मे मनुष्य आजीवन छटपटाता रहता है । ये अस्थिर विषय शाश्वत दु.खो के जनक वन जाते है । जो इन विषयो से सिक्त हो जाते है, घिर जाते है, इनसे आवेष्ठित हो जाते है उनके जीवन की वही दुर्गति होती है जो पक-लिप्त तृषित वानर की हुई थी ।

कनकसेना ! तुम तो मेरा हित ही चाहती हो ना ! क्या अब भी तुम मेरे विरक्त मन को ऐसे सुखो की ओर उन्मुख होने, उनसे ग्रस्त हो जाने के लिए प्रेरित करने की कामना रखती हो ? गम्भीर, मौन कनकसेना उत्तर मे कुछ न कह सकी । उसकी दृष्टि

धरती की ओर थी, मस्तक झुका हुआ था। कुमार की वाणी का गहन प्रभाव उसके चित्त पर था। वह स्वय सुखो की वास्तविकता से अव परिचित हो गयी थी। कुमार के सन्मार्ग पर बढने मे जो रचमात्र सी बाधा प्रस्तुत करने का प्रयत्न उसने किया था, उसे वह अपनी कुचेष्टा अनुभव करने लगी थी। उसके उद्दीप्त मन मे विरक्ति का भाव अँगडाइयाँ मे रहा था। जागतिक मोह और विषय कामनाओ मे उसे थोथापन लगने लगा था और उसके मन मे तीव्र विकर्षण इनके प्रति उत्पन्न हो गया था। क्षेत्रकुटुम्वी किसान की कथा समाप्त करते-करते उसकी मानसिक दशा कुछ और ही थी और अव वह कुछ और ही हो गयी थी। कनकसेना का जम्बूकुमार की वाणी से हृदय परिवर्तन हो गया था। प्रकटत वह मात्र इतना ही कह पायी कि हे मेरे स्वामी ! मैं आपके अभीष्ट मार्ग मे अवरोध नही वनूंगी। और उसने कुमार के चरणो मे नमन किया। ऐसा करके वह स्वय को धन्य समझने लगी।

□

६ : सिद्धि और बुद्धि की कथा

नभ सेनाका प्रयत्न

पद्मश्री, पद्मसेना, समुद्रश्री और कनकसेना अब तक जम्बूकुमार को विरक्ति के पथ से च्युत करने के लिए अतुलित आत्म-विश्वास और सामर्थ्य के साथ प्रयत्न कर चुकी थी और उन्हे अपने प्रयोजन मे सफलता प्राप्त नही हो सकी थी। जम्बूकुमार की इन चार पत्नियो का पराभव भी शेष के लिए प्रतिकूल प्रभाव की रचना नहीं कर पाया था। अन्य पत्नियो मे इस पराजय का एक-एक चरण अधिकाधिक उत्साह भरता जा रहा था। इनमे से प्रत्येक ललना स्वय को अन्यो की अपेक्षा अधिकतम क्षमता-युक्त मानती थी और यह विश्वास रखती थी कि मेरे माध्यम से ही यह प्रयोजन सिद्ध हो पायगा। अत किसी के लिए हताश होने का आधार नही था। कनकसेना के हृदय परिवर्तन पर नभसेना क्षोभ से भर उठी। इस तर्क-युद्ध मे अब नभसेना आगे आई और कुमार से कहने लगी कि हे प्रिय स्वामी! इतना तो आप स्वीकार करते ही होगे कि जो हमारी वर्तमान स्थिति है वह पूर्व सस्कारो का ही प्रतिफल है। पूर्वजन्म मे हमारे कर्म जिस प्रकार के रहे है उसके अनुरूप ही सुख-दुख की प्राप्ति हमे इस जन्म मे हो रही हैं। निश्चय ही विगत जीवन मे आपने कोई महान शुभ कार्य किये हैं, जिनके परिणामस्वरूप

आपको वैभव, सुख-सुविधाओ और मान सम्मान की प्राप्ति हुई है। जब स्वेच्छा से आप इन परिस्थितियो का निर्माण नही कर पाये हैं, तो फिर स्वेच्छा से इनका परित्याग करने पर क्यो कटिबद्ध हैं। इनका उपयोग करते हुए जीवन को सुखमय बनाने का आपका स्वयसिद्ध अधिकार है। स्वामी! इन सुखो से विमुख होना अनुचित ही नही, व्यर्थ भी है। पूर्व के शुभ कर्मों का सुफल भोगे बिना ही आप पुन नवीन शुभ कर्मो मे व्यस्त हो जाना चाहते है। क्या इसका यह अर्थ नही कि स्वामी! आप शुभफलों का पुज एकत्रित कर लेना चाहते है? और क्या इस सग्रह की प्रवृत्ति से लोभ का हानिकारक दुर्गुण आपके मानस को दूपित नही कर रहा है? फिर आप भावी मगल की कल्पना भी कैसे कर पा रहे हैं? लोभ ने किसी का भी भला नही किया है। इस प्रवृत्ति को आत्म-लाभ के लिए ही त्याग दीजिए। यह तीव्र असन्तोष आपकी मानसिक शान्ति को नष्ट कर देगा और तब मात्र हाहाकार ही आपके शेष-जीवन मे बच रहेगा। विवेकशील होकर भी आप क्यो हानि के मार्ग पर अग्रसर होना चाहते हैं। अपने इस दुराग्रह को त्याग दीजिए और अपना तथा हम सबका जीवन सुखमय बना लीजिए। क्या आपको संसार मे कोई प्रकरण ऐसा नही दिखाई दिया जिसमे लोभ और असन्तोष का दुष्परिणाम भयकर अहित सिद्ध होता है? लगता है आपने सिद्धि बुद्धि की कथा भी कदाचित नही सुनी है—अन्यथा इसका प्रभाव आपके चित्त पर अवश्य होता और आपका यह दुराग्रह कभी का छूट गया होता।

अपने इस अन्तिम वाक्य का अनुकूल प्रभाव नभसेना को

जम्बूकुमार पर दिखाई दिया। वे जिज्ञासा भाव से एकटक नभसेना के मुख की ओर निहार रहे थे और उनका सारा ध्यान उसके कथन पर केन्द्रित था। इससे उत्साहित होती हुई नभसेना ने यह कहते हुए कथा प्रारम्भ की कि लीजिए स्वामी ! आज मैं ही आपको सिद्धि और बुद्धि की कथा से अवगत करा देती हूँ।

एक समय एक ग्राम मे दो स्त्रियां रहती थी, जिनमे से एक का नाम था सिद्धि और अन्य का नाम था बुद्धि। ये दोनो ही अतिशय दरिद्र थी और कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही थी। जीवन की इस कठोरता ने इन दोनो को सहेलियाँ बना दिया था। ये दोनो वन-वन भटक कर गोबर एकत्रित करती और गाँव से बाहर उपले थापती। इन कण्डो को बेचने से जो कुछ प्राप्ति होती थी—उससे वे अपना भरण-पोषण कर लिया करती थी। साधनहीनता और असहायता की इस विषम परिस्थिति ने इन दोनो के मन मे असन्तोष और लोभ की दुष्प्रवृत्ति को बलवती बना दिया था। वे अधिकाधिक प्राप्ति की आकाक्षा रखती और सदा यही सोचा करती कि हमारे जीवन मे सुख कब आयेगा।

सयोग से एक दिन बुद्धि को एक महात्मा के दर्शनो का सोभाग्य हुआ। उस समय वह बेचारी कण्डे थाप रही थी। उसकी दीन-हीन और दुर्बल दशा पर महात्मा को दया आयी। बुद्धि ने अत्यन्त नम्रता और श्रद्धा की भावना के साथ महात्मा के चरण-स्पर्श किये थे। महात्मा इस स्त्री की सद्प्रवृत्ति से तो पहले ही प्रभावित हो चुके थे और जब उसने अपनी दु.ख-गाथा सुनाई, तो महात्मा के मन मे बुद्धि की सहायता करने की

प्रवल प्रेरणा जागी। महात्मा ने बुद्धि को एक मन्त्र वताया और कहा कि इसका निरन्तर जाप करती रहो। इसकी कृपा से तुम्हारे सारे क्लेश कट जायेगे।

निदान, हे स्वामी ! उस अभागी ने महात्मा के उपदेशानुसार मन्त्र का जाप आरम्भ कर दिया। कोई छह महीने व्यतीत हुए होगे कि उसकी आराधना सफल हुई और देव ने प्रकट होकर बुद्धि को दर्शन दिये। बुद्धि तो निहाल हो गई, अपना जन्म वह सफल मानने लगी। विघ्न विनाशक देव ने बुद्धि से कहा कि हम तेरी भक्ति-भावना से बडे प्रसन्न है। यदि तू कोई वरदान माँगना चाहे तो माँग ले। हम तेरी इच्छा को पूर्ण करना चाहते है। बुद्धि का मन तो धन मे ही लगा हुआ था। उसने तुरन्त निवेदन किया कि हे देव ! आप तो मुझे बस यह वरदान दीजिए कि मुझे नित्य एक स्वर्ण मुद्रा प्राप्त होती रहे। देव ने 'तथास्तु' कहकर बुद्धि को आर्शीर्वाद प्रदान किया और अन्तर्धान हो गये।

अव तो बुद्धि को प्रतिदिन ही एक-एक स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति होने लगी। धीरे-धीरे उसकी अभाव की स्थिति समाप्त होने लगी, यही नही सुख-वृद्धि के साथ उसकी सम्पत्ति वृद्धि भी होने लगी। वह महात्माजी और देव का लाख-लाख उपकार मानने लगी।

अव बुद्धि ने तो कण्डे थापने का कार्य छोड दिया था, उसे इसकी आवश्यकता ही नही थी, किन्तु वेचारी सिद्धि तो अव भी विपन्नावस्था मे थी। उसका तो यही रोजगार था। सिद्धि को

वडा आश्चर्य होता था कि बुद्धि की दशा कैसे सुधर गयी! उसे इतनी सम्पत्ति कहाँ से मिल गयी? उसे आश्चर्य के साथ-साथ बुद्धि की इस समृद्धि से ईर्ष्या भी होती थी। कुतूहल के वशीभूत होकर बुद्धि से उसने कई बार भाँति-भाँति से प्रश्न किये, किन्तु बुद्धि ने अपना रहस्य उद्घाटित नही होने दिया। उसने स्वयं पर दृढ नियन्त्रण स्थापित कर रखा था कि इस विषय मे एक शब्द भी उसके मुख से निकलने न पाये। अत. सिद्धि के लिए यह रहस्य, रहस्य ही रहा। अपनी दरिद्रता से मुक्ति पाने की लालसा से फिर भी सिद्धि इस दिशा मे प्रयत्नशील ही रही। इधर बुद्धि भी नारी-सुलभ दुर्बलता से ग्रस्त थी। स्त्रियाँ अपने मन की बात को अधिक समय तक मन मे नही रख पाती है। अतः एक दिन उसने सिद्धि के समक्ष सारा वृत्तान्त प्रस्तुत कर ही दिया कि किस प्रकार एक महात्मा ने आशीर्वाद के साथ वह मन्त्र उसे प्रदान किया, जिसके जाप से देव उस पर प्रसन्न हो गये और किस प्रकार के वरदान से अब उसे एक स्वर्ण-मुद्रा प्रतिदिन मिल जाती है।

वह मूल मन्त्र तो अब सिद्धि जान ही गयी थी, वह भी धनाढ्य बनना चाहती थी। उसके मन मे बुद्धि की अपेक्षा अधिक धन प्राप्त कर लेने की साध जम गयी थी। अत. अब उसने उस मन्त्र का जाप करना आरम्भ किया। देव सिद्धि पर भी प्रसन्न हुए और दर्शन देकर एक वरदान माँग लेने को कहा। सिद्धि ने देव से दो मुहरे प्रतिदिन प्राप्त करने का वरदान ले लिया। अब तो सिद्धि के भी दु:ख के दिन लद गये।

उसके घर मे भी धन सगृहीत होने लगा। इसे देखकर वुद्धि के मन मे प्रतिस्पर्धा का भाव उमडा। वह यह कैसे सहन कर लेती कि सिद्धि उसकी अपेक्षा अधिक वैभवशालिनी हो जाय। उसने फिर युक्ति से काम लिया।

वुद्धि ने मन्त्र का जाप पुन प्रारम्भ कर दिया। अवकी वार उसका जाप अधिक निष्ठा और एकाग्रता से होने लगा। परिणामत देव पुन. यथासमय प्रत्यक्ष हुए। इस वार वुद्धि ने उनसे प्रार्थना की कि कृपाकर मुझे सिद्धि की अपेक्षा दुगुना धन प्राप्त करने का वर प्रदान कीजिए। वुद्धि को अभीष्ट वरदान प्राप्त हो गया और उसके पास सम्पत्ति की प्रचुरता होने लगी। कुछ ही समय मे उसका धन सिद्धि की अपेक्षा दुगुना हो गया। तव उसे सन्तोष की साँस आयी, किन्तु सिद्धि के तो सीने पर साँप ही लेट गया। वह भी भला वुद्धि से कव पीछे रहने वाली थी। उसने भी पुन. मन्त्र जाप से देव को प्रसन्न कर बुद्धि से दुगुना धन प्राप्त कर लिया। इसके लोभ का तो कोई आर-पार था ही नही। प्रचुर धन भी (जो उसे प्राप्त हो जाता था) उसके लिए तुच्छ रह जाता था, नगण्य रह जाता था। उसकी लोलुपता "और ' और" की ही रट लगाती रहती।

इस प्रकार सिद्धि और वुद्धि की यह होड चलती रही.... चलती रही। किसी को भी प्राप्त धन पर सन्तोष नही होता था। दोनो एक-दूसरे को पीछे छोड देने की धुन मे लगी हुई थी। एक दिन वुद्धि के मन मे एक कुचक्र आया। दुर्विचार को आश्रय

देकर उसने पुन· विपत्ति-विदारक देव को प्रसन्न कर लिया। जब अबकी बार देव ने उसे दर्शन दिये तो उसने अत्यन्त विनयपूर्वक गिड़गिड़ाते हुए, हाथ जोडकर प्रार्थना की कि हे प्रभु ! आपने मुझे अपार-अपार वैभव प्रदान कर दिया है। अब धन की लालसा मुझे नही रही। अब तो आप मुझ दासी पर एक कृपा और कर दीजिए। भगवान, मेरा एक नेत्र ज्योतिहीन कर दीजिए। बुद्धि इतना निवेदन कर मौन हो गयी और देव भी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। हे स्वामी ! परिणाम तो निश्चित था, नभसेना ने कहा कि बुद्धि को अपनी एक आँख खो देनी पडी। किन्तु ऐसा उसने खूब सोच-समझकर किया था। वह भली-भाँति जानती थी कि इस बार भी सिद्धि उसकी अपेक्षा दुगुने का वरदान प्राप्त करेगी। कुमार ! उसका अनुमान सत्य ही उतरा। सिद्धि ने मन्त्र के जाप से देव को पुनः प्रसन्न कर लिया था और उसने इस बार भी पूर्व की ही भाँति यह माँगा कि आपने जो बुद्धि को प्रदान किया है, उसका दुगुना मुझे प्रदान कीजिए। देव अपने भक्त की कामना को अस्वीकार करते ही कहाँ है ? उन्होने वरदान दे दिया। परिणामत. बुद्धि की तो एक ही आँख की हानि हुई थी, किन्तु सिद्धि को अपने दोनो ही नेत्र खोने पडे। वह अन्धी हो गयी। तब वह अपने लोभ की प्रवृत्ति को कोसने लगी। अगर वह लालच मे न पडी होती तो उसके लिए जगत् अन्धकारपूर्ण न हुआ होता। किन्तु अब तो किया ही क्या जा सकता था ! वह अन्धी होकर हाहाकर करने लगी। घोर-पछतावे के आवेश मे वह अपने केश नोचने लगी, छाती पीटने लगी,

रुदन-क्रन्दन करने लगी। ठोकरें खाते रहना ही अब उसकी नियति रह गयी थी। उसकी सम्पत्ति भी अब उसके इस अभाव की पूर्ति करने में असमर्थ थी। दारुण दुःख और छटपटाहट उसके लोभ का ही दुष्परिणाम था। असन्तोष उस लोभ के मूल मे था।

हे स्वामी! आपको विशेष प्रयोजन से ही मैंने यह कथा सुनायी है। आपके मन मे भी अपार वैभव होते हुए भी असन्तोष है, कुछ नवीन को प्राप्त करने का लोभ है। तनिक सोचकर देख लीजिए कि क्या आप सिद्धि जैसी दुरवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं? मैं समझती हूँ कि आपने यह कथा सुनकर अपना विचार बदल ही दिया होगा। जीवन मे जो सुख आपको प्राप्त हुए हैं, उनका उपभोग कीजिए और गृहत्याग के संकल्प को भूल ही जाइए। आपको अभाव क्या है?-वर्तमान स्थिति से सन्तोष करने की ही तो आवश्यकता है। अपने सारे परिवार की प्रसन्नता के लिए और अपने हित के लिए आपको ऐसा ही करना चाहिए।

□

१० : विनीत-अविनीत अश्वों की कथा : नभसेना का भ्रम-निवारण

नभसेना ने युक्तिपूर्वक प्रयत्न किया था, किन्तु उसे अपने प्रयोजन मे सफलता नही मिल पाई। वह भी जम्बूकुमार को टस से मस नही कर सकी। वे अपने विचारो पर पूर्ववत् ही दृढ बने रहे। कुमार को अनुभव हुआ कि नभसेना एक भ्रान्ति से ग्रस्त है और इसी कारण सिद्धि और बुद्धि की कथा के माध्यम से मुझे इन असार सुखो मे लिप्त रहने की प्रेरणा दे रही है। उसकी इस भ्रान्ति को दूर करने के प्रयोजन से वे उसकी ओर उन्मुख हुए और बोले कि नभसेना! तनिक व्यापक बुद्धि से सोचने का प्रयत्न करोगी तो तुम्हे सहज ही यह ज्ञात हो जायगा कि जिन सुखो की तुम चर्चा कर रही हो, वे वास्तव मे सुख हैं ही नही। वे तो दु खो के ही मात्र आकर्षक रूप हैं। मुझे इनकी चाहना ही नही। मैं तो आत्म-कल्याण के अनुपम और चिर-सुख का अभिलाषी हूँ। अत तुम्हारा यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि मुझमे प्राप्त सुखो के प्रति असन्तोष का भाव है और इसलिए मैं अधिकाधिक प्राप्ति के लिए व्यग्र हूँ। फिर भला मुझे सिद्धि की भाँति क्यो पछताना पडेगा? क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य—इसका विवेक मनुष्य के लिए आवश्यक है। तभी वह सारहीन और मिथ्या जागतिक सुखो को त्याग पायेगा और आत्म-कल्याण

के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा। इन भौतिक और दु खजनक सुखो को प्राप्त करना कुमार्गगामी होना है और निर्वाण की साधना को निश्चित रूप से सुमार्ग कहा जा सकता है। कुमार्ग पर गतिशील रहने के परिणाम भी अशुभ होगे और सुमार्गानुसरण से सुफल की प्राप्ति होती है।

नभसेना ! जिस पर मैं गतिशील हूँ वह सन्मार्ग है और तुम मुझे कुमार्गी होने के लिए प्रेरित करना चाहती हो। इस सन्दर्भ में मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि केवल सन्मार्ग की ओर उन्मुख हो जाना, अथवा उस पर अग्रसर होने लगना ही पर्याप्त नही है। इस मार्ग के प्रति साधक के मन मे ऐसी दृढ आस्था का भाव होना चाहिए कि प्रबलतम प्रलोभन अथवा भय भी उसे विचलित नही कर पाये। किसी भी परिस्थिति मे वह अपने निश्चय से टलकर सांसारिकता की ओर न मुडे—तभी उसे सफलता प्राप्त हो सकती है। मैंने इस मर्म को भली-भाँति चित्तस्थ कर लिया है। अतः तुम्हारा प्रयास विफल ही जायगा। मैं सासारिक विषयो को अपना साध्य स्वीकार नही कर सकता।

कुछ क्षण मौन रहकर कुमार ने पुनः नभसेना को सम्बोधित किया और कहा कि तुमने कदाचित् विनीत-अविनीत अश्वो की कथा नही सुनी है—इसीलिए तुमने यह प्रयत्न किया है। सुनो, मैं तुम्हे वह कथा सुनाता हूँ।

किसी राज्य के स्वामी को हाथी, घोडे, ऊँट आदि पालने मे गहन रुचि थी। उसकी अश्वशाला मे कई स्वस्थ, स्फूर्तिशील

और शक्तिशाली अश्व थे। उन अश्वो मे अपनी-अपनी अद्भुत विशेषताएँ थी। कोई सुन्दर था तो कोई साहसी। दूर-दूर से लोग राजा की अश्वशाला को देखने के लिए आते थे। राजा के इन अश्वो मे एक विनीत नाम का घोडा था और एक अश्व अविनीत नाम का भी था। इन अश्वो के स्वभाव के आधार पर ही कदाचित् इनका नामकरण इस प्रकार हुआ था। अविनीत की दुर्बलता यह थी कि ज्यो ही तनिक-सी प्रशंसा कोई उसकी करता, वह उसका दास हो जाया करता था। फिर वह बहलाने वाला व्यक्ति उसे जिस किसी रास्ते पर डाल देता, वह उसी पर चल पडता था। यह सोचना उसके बस की बात नही होती थी कि अमुक मार्ग उसके योग्य है या नही अथवा उस मार्ग पर चलने की उसमे क्षमता है अथवा नही। वह तो यह भी नही सोच पाता था कि अमुक मार्ग के कारण कही उसकी कोई हानि तो नही हो जायगी। वह अत्यन्त प्रचण्ड व शक्तिशाली था और तीव्र वेग से गमन करता था। साधारण आरोही तो उसे नियन्त्रित भी नही कर पाता था। इसके विपरीत विनीत बड़ा ही सरल अश्व था। वह शक्तिशाली भी था, किन्तु उसमे उद्दण्डता नही थी। वह बडा शान्त था और अवसरानुकूल वेग से गतिशील रहा करता था। सरल और उत्तम मार्ग पर गमन करने का ही वह अभ्यस्त था। कुमार्ग पर तो वह किसी भी परिस्थिति मे नही जाता था। यही कारण था कि सभी अश्वारोही विनीत के प्रति स्नेह का भाव रखते थे और अविनीत से भयभीत रहा करते थे। ये दोनो ही अश्व बडे सुन्दर और ऊँचे कद के थे।

एक रात्रि को कुछ चोर इस राजा के अस्तवल मे घुस आये। सवसे पहले उनकी नजर अविनीत पर पडी और उनका जी लल-चाने लगा। ऊँची कनोती का यह अश्व था भी ऐसा ही। अतः चोरो ने अविनीत को खूंटे से खोला और रस्सी थाम कर चल दिये। अविनीत ने प्रारम्भ मे तो कुछ आनाकानी की कुछ आगे-पीछे हुआ, किन्तु जव चोरो ने आपसी वार्तालाप मे इस अश्व की सुन्दरता, सुडौलता, सवलता आदि के लिए खूव प्रशसा की तो वह रीझ गया और सरलता से उनके साथ चल पडा। ये चोर वहुत दूर के थे, जहाँ वे अविनीत को ले जाना चाहते थे और सव की दृष्टि से वचाकर ले जाना भी उनके लिए आवश्यक था। अत वे अश्व को ऊवड-खावड वन मार्ग से ले जाने लगे। ऐसे कुमार्ग को ग्रहण कर लेना भी उसके लिए सकोच की वात नही थी। वह तनिक भी नही हिचकिचाया और चल पडा—ऊँचे-नीचे पथरीले रास्ते पर। विनीत उद्दण्ड अवश्य था और ऐसा शरारती भी कि अपने सवार पर क्या वीतेगी—इसकी भी चिन्ता नही किया करता, किन्तु वह सीधे राजमार्गों पर ही चला करता था, इस यात्रा मे ऊवड-खावड़ मार्ग पर चलना उसके लिए इसी कारण असुविधाजनक हो रहा था। उसे अत्यधिक कष्ट भी हुआ और सह वेहद थक भी गया था। चोर उसे खीचे चले जा रहे थे और वह पीछे-पीछे घिसटता जा रहा था। वेहद थकान, भूख-प्यास और कुमार्ग के कष्ट को वह अधिक सहन नही कर पाया। परिणाम यह हुआ कि शिथिल होकर अविनीत मार्ग की चट्टानो पर ही गिर पडा। तेज धूप मे वह तडपने लगा। चोर अश्व की

प्राण-रक्षा के लिए इधर-उधर जल की खोज मे भागे, किन्तु दुर्भाग्य था अविनीत का कि कही भी आस-पास जल नही मिला। अन्तत' अविनीत का देहान्त ही हो गया। इस सुन्दर अश्व को खोकर चोर बडे निराश और दु खी हुए। वे बिना अच्छा अश्व लिए लौटना नही चाहते थे। अत वे मार्ग से ही पलट गये और फिर से इसी राजा की अश्वशाला मे पहुँच गये।

इस रात्रि मे विनीत को देखकर चोरो का मन ललचाया। वे उसे चुरा कर ले जाने लगे। विनीत ने भी अश्वशाला से इनके साथ बाहर नही निकलने की खूब कोशिश की, किन्तु वह बेचारा विवश था। चोर रस्सी को खीचकर किसी प्रकार उसे बाहर ले ही आये। पशु ही तो था वह, जिधर उसे घेरा जाने लगा उधर ही वह चलने लगा। चोर इस अश्व को भी उसी मार्ग से ले जाना चाहते थे। जब कुछ चल चुकने पर विकट और ऊँचा-नीचा रास्ता आया तो विनीत ठिठक कर खडा हो गया। वह कुमार्ग पर चरण बढाने का अभ्यस्त न था। चोरो ने पुचकार कर उसे आगे बढाना चाहा पर वह न हिला। खूब खीचा गया और वह तो जैसे स्तम्भ की भाँति ही गड गया। बहुतेरा प्रयत्न किया किया, किन्तु वह अश्व तनिक भी आगे नही बढा। कुमार्ग पर बढने का वह विरोध ही करता रहा। अभी चोर अश्व को लेकर नगर से अधिक दूर नही जा पाये थे और इधर प्रात होने को आया। अत पकडे जाने के भय के कारण विनीत को वही छोड कर सभी चोर भाग खडे हुए।

अविनीत के चुरा लिए जाने पर राजा को अधिक शोक नही

हुआ था, किन्तु उस प्रात काल जब उसे सूचना दी गयी कि गत रात्रि विनीत को भी चुरा लिया गया—तो वह दु ख से भर उठा। राजा को' विनीत से अत्यन्त लगाव था। वह स्वय एक अन्य तीव्रगामी अश्व पर आरूढ होकर विनीत की खोज मे चल पडा। नगर के बाहर निकल कर राजा कुछ ही मार्ग तय कर पाया था कि उसे उस स्थल पर विनीत चुपचाप खडा दिखायी दिया जहाँ से जगल का बीहड रास्ता शुरू होता था। अपने स्वामी को देख कर अश्व प्रसन्नता के मारे हिनहिनाने लगा। राजा भी अपने प्रिय अश्व को सुरक्षित पाकर हर्षित हुआ। राजा ने देखा कि उसके गले की रस्सी टूट कर छोटी सी रह गयी है, उसके गर्दन के केश भी अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। विनीत की स्निग्ध पीठ पर एक-दो बेत के चिह्न भी उभर आये थे। यह देखकर राजा को यह अनुमान लगा लेने मे कोई विलम्ब नही हुआ कि इसे कुमार्ग पर घसीटने की बहुतेरी कोशिश की गयी है, किन्तु इसने दृढता-पूर्वक इसका विरोध किया है। विनीत की इस सद्प्रवृत्ति के कारण राजा के मन मे उसके प्रति स्नेह का भाव कई गुना अधिक गाढा हो गया। अतिशय वात्सल्य के साथ राजा ने विनीत की पीठ को अपने कोमल करतल से सहलाया, उसे प्यार से पुचकारा और स्वामी का यह स्नेह पाकर विनीत कृतार्थ हो गया। कृतज्ञता ज्ञापित करने को वह एक बार फिर जोर से हिनहिनाया। राजा का प्यार भरा सकेत पाकर वह उसके पीछे हो लिया और पुनः अश्वशाला मे पहुँच गया। अपनी सद्प्रवृत्ति के कारण राजा के मन मे विनीत ने विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था।

नभसेना ! इस प्रकार प्रलोभनो, वहकावो और मिथ्या प्रशसा के फेर मे पडकर व्यक्ति की अविनीत अश्व की भाँति ही दुर्दशा हो जाती है। और जो प्रत्येक परिस्थिति का साहस और दृढता के साथ सामना करता है, किन्तु उपयुक्त मार्ग का कभी परित्याग नही करता—उस सुमार्गी को अपने लक्ष्य मे सफलता, जगत मे सम्मान और परलोक मे सद्‌गति अवश्य ही प्राप्त हो जाती है। मैं इस कथा के आदर्श को अपने जीवन मे ढाल चुका हूँ। अविनीत की भाँति कुमार्गी मैं नही बन सकता। सन्मार्ग के प्रति दृढ़ता का भाव मैंने विनीत से सीख लिया है। मुझे साधना के पथ से च्युत कर पुनः लौकिक विषयो मे लिप्त हो जाने के लिए कोई भी तत्पर नही कर सकता और न ही किसी को इस प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए। इस जगत् के प्रत्येक मनुष्य को विनीत से शिक्षा लेनी चाहिए। सभी को सुमार्गी होकर मानव-जीवन सार्थक कर लेना चाहिए। यह कहकर जम्बूकुमार मौन और गम्भीर हो गये।

कुमार की वाणी का नभसेना पर गहरा प्रभाव हुआ। वह भी सासारिक सुखो को व्यर्थ मानने लगी, त्याज्य मानने लगी। अपने व्रत के प्रति कुमार की दृढता देख कर उनके प्रति नभसेना के मन मे श्रद्धा उमड आयी। नतमस्तक होकर उसने कुमार के दृष्टि-कोण मे ही सत्य स्वीकार कर लिया और पराजित होकर भी वह गौरव का अनुभव करने लगी।

□

११ : दुराग्रही ब्राह्मण की कथा : कनकश्री का प्रयत्न

नभसेना के इस प्रकार हार स्वीकार कर लेने और उसके मस्तक नत कर लेने पर अतुलित गर्व के साथ कनकश्री की ग्रीवा उन्नत हो गयी। उसने नभसेना को उसके पराभव पर उपालम्भ देना व्यर्थ समझकर सीधा जम्वूकुमार को ही सम्वोधित किया और कहने लगी कि स्वामी! अब वारी मेरी है। मेरा नाम तो आप सुन ही चुके होगे—कनकश्री है नाम मेरा! यह कहते-कहते उसके मुख पर कनक-दीप्ति ही विकीर्ण हो गयी, मुझसे पार पाना कठिन रहेगा आपके लिए। वेचारी नभसेना आपको प्रत्युत्तर नही दे पायी, किन्तु तनिक यह तो स्पष्ट कीजिए कि आपको विरक्ति, साधना आदि किस प्रयोजन के लिए प्रिय हो गयी है। क्या आप इस नवीन मार्ग पर गतिशील होकर सुख-लक्ष्य को प्राप्त नही करना चाहते है? फिर यह कैसा विरोध?. आप भी सुख-लाभ की कामना करते है, हम भी आपसे उपलब्ध सुखोपभोग करन के लिए ही आग्रह कर रही है। इन्हे त्यागने के लिए जो उद्दाम हठ आपके चित्त मे वल खा रही है—हम उसी को निर्वल कर देना चाहती है। कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह समझ सकता है कि हमे जिसकी चाह है, वही जव हमारे लिए उपलब्ध है, तो हमे उसका भोग करना चाहिए। यदि इसके स्थान पर हम

उसका परित्याग कर दे और फिर उसी की कामना मे प्रयत्नशील हो जायँ—यह अनुचित है। सुख के लिए दुख के काल मे मनुष्य भगवान को भजता है। सुख के काल मे इसीलिए वह भजन नही करता, कि उसे कोई इच्छा पूरी करानी ही नही होती है। अत. आप भी इस सुखी जीवन का आनन्द लीजिए, क्यों व्यर्थ के जजाल मे स्वय को ग्रस्त कर लेना चाहते हैं।

कुछ क्षण मौन रहकर कनकश्री ने पुन कथन आरम्भ किया। वह कहने लगी कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सकल्प के नाम पर आपके मन मे दृढ दुराग्रह है, एक जिद है, जो आपके ध्यान को उपयोगी और हितकारी किसी अन्य विचार की ओर केन्द्रित नही होने देती है। इस हठ को छोडिये, कुमार ! यह हम सबके लिए घातक सिद्ध होगी। और दुराग्रह यदि अविवेक से सयुक्त हो, तब तो उसके हानिकारक प्रभाव की कोई सीमा ही नही रहती। यदि आपको मेरे इस कथन मे अविश्वास की गन्ध आती हो तो लीजिए मैं आपको ब्राह्मण कुमार की कथा सुनाती हूँ जो आपके इस अविश्वास को दूर कर देगी।

कुमार धैर्य के साथ कनकश्री का कथन सुनते जा रहे थे। उनकी अचचल मुद्रा मे कोई परिवर्तन नही आया। कोरे दुराग्रह के कारण व्यक्ति की कितनी दुर्गति हो जाती है—इसे स्पष्ट करने वाली एक कथा हे मेरे स्वामी ! मैं आपको सुनाती हूँ। यह कहकर उसने मूर्ख ब्राह्मण की कथा सुनाई—

किसी ग्राम मे एक ब्राह्मण रहता था। वह युवक था, स्वस्थ

था, किन्तु जीविकोपार्जन मे उसकी तनिक भी रुचि नही थी। बडे ही अलमस्त स्वभाव का था। रसीले गीत गाते रहना और भंग पीकर उपवन मे पडे रहना—बस यही उसकी दिनचर्या थी। पिता जीवित थे, अत. उसे कोई चिन्ता थी। दोनो समय भोजन मिल ही जाता था। धीरे-धीरे वह बडा ही प्रमादी और अनुद्यमी हो गया था। पुत्र के ऐसे कुलक्षण देखकर माता-पिता बडे चिन्तित रहा करते थे। अपनी एकमात्र सन्तान होने के कारण उन्होंने उसे बड़े वात्सल्य के साथ बड़ा किया था, किन्तु उसके भावी अमगल के चिह्न देखकर वे हताश होने लगे। पिताजी कठोरतापूर्वक उसे सन्मार्ग पर लाना चाहते थे—उसे प्रताडित करते, डांट-फटकार बताते। माता अत्यन्त स्नेह और कोमलता के साथ प्रबोधन देती कि बेटा! इस प्रकार कैसे काम चलेगा? पेट भरने के लिए अन्न तो चाहिए ही और इसके लिए किसी रोजगार मे तुमको लगना चाहिए। अब तुम बच्चे नही हो। अपना सारा जीवन तो तुम्हे स्वय ही व्यतीत करना होगा। हम भला कब तक बने रहेगे? सामने तो ब्राह्मण पुत्र यही कहता कि हाँ, अब मैं अर्थोपार्जन के किसी कार्य मे लग जाऊँगा। किन्तु कुछ ही पलो मे वह अपने वचनो को भी विस्मृत कर देता था। माँ के मृदुल व्यवहार और पिता के कठोर अनुशासन की कोई भी अनुकूल प्रतिक्रिया उस पर नही हुई। उसकी जीवन पद्धति मे कोई परिवर्तन नही आया।

एक दिन अनायास ही वृद्ध पिता का स्वर्गवास हो गया। असहाय विधवा ब्राह्मणी क्रन्दन करने लगी। पति का आश्रय तो

टूट ही गया था और पुत्र तो स्वय ही किसी के आश्रित रहने जैसा था। ऐसी अवस्था मे ब्राह्मणी को चहुँ ओर घोर अन्धकार दिखायी देने लगा। एक दिन माता ने पुत्र को अपने पास बिठाकर फिर समझाया कि बेटा! अब हमारे वे दिन नही रहे। तेरे पिताजी का स्वर्गवास हो जाने पर अब हमारे लिए आजीविका का कोई साधन शेष नही रहा है। मेरे पास कोई सम्पत्ति भी ऐसी नही है कि कुछ दिन हमारा निर्वाह हो सके। तू स्वय ही सोच कि क्या इस तरह बेकार घूमने-फिरने से ही तू गृहस्थी के दायित्वो को निभा लेगा। अब तो तुझ पर सारी जिम्मेदारियाँ आ गयी है। तुझे किसी-न-किसी काम मे लग जाना चाहिए, जिससे हमे दिन मे दो वक्त का भोजन तो मिलता रह सके।

माता के कथन का पुत्र पर पहली बार वास्तविक प्रभाव हुआ। वह मन-ही-मन दृढता के साथ सोचने लगा कि अब वास्तव मे मुझे कुछ उपार्जन करना ही चाहिए। वह तनिक स्वस्थ और शान्त मन से यह सोचने लगा कि क्या कुछ किया जा सकता है। उसने अब तक इस दिशा मे सोचा ही नही था। अतः इन बातो से वह सर्वथा अपरिचित था कि कही नौकरी पाने के लिए क्या करना पडता है? अथवा किसी काम मे सफलता के लिए व्यक्ति मे किन-किन गुणो का होना अनिवार्य होता है? कुछ पल मौन रहकर वह यही सब कुछ सोचता रहा और तब उसने माता को आश्वस्त किया कि वह निश्चय ही अब सारी जिम्मेदारियो को निभायेगा और जीविकोपार्जन के लिए कोई काम-धन्धा करेगा। अपनी अनभिज्ञता व्यक्त करते हुए ब्राह्मण पुत्र ने अपनी माता से

कहा कि मुझे कुछ ऐसे गुर तो वताओ, जिससे जो काम भी मैं करूँ उसमे सफलता और लाभ प्राप्त हो सके।

माता ने अपने पुत्र से प्रथम वार ही ऐसे वचन सुने थे और इससे उसे कुछ सीमा तक सन्तोष हुआ। तव उसने अपने पुत्र से कहा कि एक वात का विशेष रूप से तुम्हे ध्यान रखना चाहिए कि जो कार्य आरम्भ करो उसे पक्की लगन से करो। अनेक वाधाएँ भी आ सकती हैं, कष्ट भी सहन करने पड़ सकते है—इन सवका धैर्य से सामना करो। जो इनसे विचलित हो जाता है और कार्य को बीच मे छोड देता है—उसे असफलता और निराशा ही मिलती है। ब्राह्मण ने माता की इस सीख को गांठ वाँध लिया और चल पड़ा—रोजी की खोज मे।

वह स्थान-स्थान पर नौकरी खोजता रहा। दोपहर होने को आयी, किन्तु उसे कही से कोई आशा नही वँधी। किन्तु माता की शिक्षा उसे स्मरण थी, अत. वह विचलित नही हुआ और नौकरी खोजने के कार्य मे लगा रहा। इसी समय उसे सड़क पर दूर कही शोर सुनायी दिया। उसने देखा कि आगे-आगे एक गधा रेंकता हुआ भागा चला आ रहा था और उसके पीछे उसका मालिक दौड़ रहा था। जव गधा ब्राह्मण से कुछ ही दूर रह गया तो गधे के मालिक ने उससे सहायता माँगी और गधे को पकड़ लेने को कहा। जव तक इस सारी वात को ब्राह्मण समझ पाया, तव तक गधा उसके समीप से होकर दो एक गज आगे निकल गया। विद्युत्वेग से ब्राह्मण पीछे मुड़ा और लपक कर उसने गधे को पकड लेना चाहा। इस प्रयास मे उसे

गधे की पूंछ ही हाथ मे आयी । उसने अत्यन्त दृढ़ता से पूंछ को पकड़ लिया । गधा इस सकट से अचकचाया और तेजी से दौड़ने लगा । ब्राह्मण भी उसे अपनी ओर खीचने प्रयास मे दौड़ने लगा । कुछ दूर तक ही दौडने पर वह थक गया । इधर गधे का वेग और बढ गया और परिणामतः ब्राह्मण गिर पडा किन्तु पूंछ को उसने नही छोडा । किसी काम को बीच मे न छोडने की शिक्षा लेकर ही तो वह घर से चला था ! अब वह गधे के पीछे-पीछे घिसटने लगा । उसका सारा शरीर लहूलुहान हो गया । अपनी पूंछ छुडा लेने के लिए गधा दुलत्तियाँ भी झाडता जा रहा था । किन्तु इन बाधाओ से ब्राह्मण कब विचलित होने वाला था । उसने पूंछ नही छोड़ी ।

इस बस्ती मे यह एक नवीन कौतुक था । लोग इस दृश्य को देखकर आश्चर्य कर रहे थे कि इतना कष्ट पाकर भी यह युवक पूंछ को पकड़े हुए क्यो है ? छोड क्यो नही देता ? अन्त मे जब कुछ लोगो ने एकत्रित होकर, सामने से आकर उस गधे को घेर लिया, तब वह थमा और इस प्रकार उस ब्राह्मण की प्राणरक्षा हुई थी, अन्यथा उस अल्पज्ञ ब्राह्मण ने तो एक अच्छे सिद्धान्त के अधानुकरण के दुराग्रह से अपने लिए मृत्यु को ही न्यौता भेज दिया था ।

हे स्वामी ! जम्बूकुमार को कोमलता के साथ सम्बोधित कर कनकश्री कहने लगी कि आप भी सचेत हो जाइये । आपका यह हठ ठीक नही । यदि अब भी आप सावधान नही हुए तो, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आप भी वैसे ही विपत्ति मे फंस

जायेगे जैसे उस ब्राह्मण को ग्रस्त होना पडा। यह कहते-कहते कनकश्री यकायक ही मौन हो गयी। वह बडे उत्साह के साथ कुमार की ओर देखने लगी कि उसकी इस वार्ता का उन पर क्या और कितना प्रभाव हुआ है ? कुमार अब भी निर्विकार भाव से कनकश्री को निहार रहे थे—जैसे उनके लिए अभी यह वार्ता अपूर्ण ही हो। उनके चेहरे पर जमी इस प्रभावशून्यता को पढ कर कनकश्री कुछ बुझ सी गयी। उसे पूर्व प्रयत्न-कर्ताओ की पराजय स्मरण हो आई और उसके भीतर एक टीस उठी और सारे शरीर मे लहरा गई। स्वत ही उसका मुख उदासी से पुत गया।

□

१२ : चरक की कथा : कनकश्री का गर्व-गलन

कनकश्री का अनुमान सत्य ही था। वह जम्बूकुमार के विचारो को परिवर्तित करने मे विफल हो गयी थी। उसकी हताशा को देखकर कुमार बडी मृदुलता के साथ कहने लगे कि कनकश्री ! तुमने जो कथा कही है—वह मिथ्या नही है। एक मूल्यवान तथ्य का प्रतिपादन इससे होता है कि विचारहीनता के साथ हठपूर्वक जो आचरण किया जाता है उसके दुष्परिणाम ही होते हैं। किन्तु तनिक सोचकर देखो कि क्या यह कथा मेरे आचरण, सकल्प, लक्ष्यनिर्धारण आदि से तनिक भी कोई ताल-मेल रखती है। मैं समझता हूँ कि मेरी परिस्थितियो और तुम्हारी कथा के उस ब्राह्मण की परिस्थितियो मे समानता का अनुभव करना, तुम्हारा भ्रम है। मैंने गृहत्याग का निश्चय किया है, विरक्त होकर सयम स्वीकारने का व्रत लिया है, मोक्षार्थ साधना के लिए मैं कृतसकल्प हूँ—और इस सबका मैंने विचारपूर्वक निर्णय लिया है। मैं न तो किसी परम्परा का अन्ध अनुसरण कर रहा हूँ और न ही मेरे द्वारा चुने हुए मार्ग से मैं अपरिचित हूँ। अत. गधे की पूंछ को दृढता के साथ पकड़े रखने से मेरी अवस्था सर्वथा भिन्न है। सासारिक सुखोपभोग को व्यर्थ और हानिकारक मानकर मैं उनका परित्याग कर रहा हूँ और सयम

को श्रेयस्कर मानकर—उसे स्वीकार कर रहा हूँ। कनकश्री ! सुखो की लिप्सा मनुष्य के लिए घातक शत्रु होती है। इसी लिप्सा के वशीभूत होकर मनुष्य अनेक अनर्थ करता रहता है, आत्मा की अनुमति के बिना ही वह कुकर्मों मे प्रवृत्त होता है। अपनी आत्मा के प्रति भी वह निष्ठावान नही रह पाता है। और इन सबका कुफल प्रकट होना है—उसके पतन और विनाश के रूप मे।

जम्बूकुमार ने आगे कहा कि कनकश्री ! तुमने एक बात और भी कही थी कि मुझे इस समय साधना की कोई आवश्यकता अनुभव नही करनी चाहिए और इसका कारण तुमने यह प्रकट किया था कि दु:ख के समय मे ही मनुष्य भगवान का स्मरण करता है, सुख मे नही और मेरे पास समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अब तनिक मेरी धारणा से भी परिचित होने का प्रयत्न करो। कनकश्री प्रथम तो मैं इसे अनुचित मानता हूँ कि केवल दु:ख मे ही साधना करनी चाहिए, सुख मे नही और फिर न तो ये उपलब्ध सुख मेरे लिए सुख हैं और न ही ऐसे किन्ही सुखो की प्राप्ति के लिए मैं प्रयत्नशील हूँ। मैं तो चिर-प्रभावकारी, सर्वोच्च और यथार्थ सुख का अभिलाषी हूँ। इन तथाकथित सुखो के फेर मे पडकर मैं अपनी आत्मा के साथ अन्याय नही कर सकता और न ही इनके प्रलोभन मे पडकर मैं अन्यान्य पाप कर्मों मे प्रवृत्त होने को तत्पर हूँ। मुझे चरक ब्राह्मण का प्रसग स्मरण है जो मुझे नित्य ही इस सम्बन्ध मे सावधान करता रहता है। लो तुम्हे भी सक्षेप मे चरक की कथा सुनाता हूँ। सम्भव है तुम्हे भी उससे कुछ लाभ प्राप्त हो।

कनकश्री ! वहुत काल पहले की चर्चा है कि एक देश के राजा को अश्व-पालन मे गहरी रुचि थी। उसकी घुडसाल मे भाँति-भाँति के सुन्दर और अद्भुत अश्व थे। इनमे से एक घोडी बडी गुणवती थी और इस कारण वह राजा को सर्वाधिक प्रिय थी। राजा ने इस घोडी की पृथक व्यवस्था कर रखी थी। एक सेवक अलग से इसके लिए नियुक्त था, जो घोड़ी के खाने-पीने आदि का सारा प्रवन्ध किया करता था।

इस सेवक पर राजा को बडा विश्वास था और इसी कारण उसे राजा द्वारा अपनी प्रिय घोडी की सँभाल के लिए नियुक्त किया गया था। राजा के विश्वास को इस सेवक ने निभाया नही। कनकश्री ! इस सेवक को स्वादिष्ट व्यजनो के सेवन की चाट लगी हुई थी। आय तो इसकी सीमित थी, जिसमे वह अपने परिवार का भरण-पोषण भी बडी कठिनाई से कर पाता था। ऐसी दशा मे अपनी रसना की तुष्टि के लिए उसने अनीति से काम लिया। घोड़ी के लिए राजा के भाण्डार से दाना आदि जो खाद्य सामग्री मिलती थी, वह उसकी कुछ मात्रा चुराया करता और बाजार मे सस्ते मोल मे बेच देता। इस दाम से वह अपने लिए स्वादिष्ट व्यजन खरीदा करता। ऐसा करते हुए उसकी आत्मा उसे धिक्कारती थी। उसके भीतर की अच्छाई उसे इस दुष्कर्म के लिए रोकती थी। किन्तु वह इस सबको अनसुनी कर देता और चोरी के क्रम को सतत रूप से बढाता रहा। अब तो वह घोडी के अधिकाश दाने का दुरुपयोग करने लगा। घोड़ी बेचारी प्राय. भूखी रहने लग गयी। इस परिस्थिति मे उसका दुर्बल हो

जाना भी स्वाभाविक ही था, किन्तु सेवक तब भी सावधान नही हुआ। अत्यधिक कृषगात होकर एक दिन घोडी की मृत्यु ही हो गयी। राजकाज मे अति व्यस्त होने और विश्वासपात्र सेवक के नियुक्त हो जाने के कारण राजा घोडी की ओर ध्यान नही दे पाया था, किन्तु जब उसे उसकी मृत्यु का समाचार मिला तो उसे बडा शोक हुआ। राजा ने घोडी की मृत्यु के कारणो की खोज करायी तो तथ्य का पता चल गया कि वह सेवक घोडी को उसका पूरा दाना नही खिलाता था और उसमे से चुरा लिया करता था। राजा को उस सेवक पर बडा क्रोध आया और उसने उसे सेवाच्युत कर दिया।

अब सेवक के दुर्भाग्य के दिन आरम्भ हो गये थे। वह अपने इस जघन्य अपराध के लिए सारे क्षेत्र मे कुख्यात हो गया था। उसे कही अन्यत्र भी नौकरी नही मिली। वह भूख के मारे तड़पने लगा। अब वह अपनी करनी पर बहुत पछताता था, पर उससे स्थिति मे कोई सुधार सम्भव नही था। उसने अपनी आत्मा की आवाज को तनिक भी नही सुना, उसी का यह दुष्परिणाम था। एक दिन भयकर भूख से छटपटाते हुए उसने प्राण त्याग दिये।

इस घोड़ी ने मर कर एक अन्य ग्राम मे नर्तकी के घर सुन्दर कन्या के रूप मे जन्म लिया था और इस सेवक का पुनर्जन्म भी इसी ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। इस जन्म मे इसी का नाम चरक था। चरक जन्म से ही विकलाग था। उसके अग वक्र और असन्तुलित थे। उसे काम-काज करने मे भी बडी कठि-

नाई होती थी। अपने पूर्वजन्म के दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप ही उसे इस जन्म मे यह दण्ड मिला था। चरक भी बडा होता गया और नर्तकी की पुत्री भी युवती होकर अपार रूपवती हो गयी। वह स्वय भी कुशल नर्तकी वन गयी थी और दूर-दूर तक उसकी कला के कौशल का यश व्याप्त हो गया था। इस जन्म मे भी उसे इस नर्तकी का दासत्व धारण करना पडा। नर्तकी के घर मे वह सेवक होकर रहने लगा। उसे नर्तकी के कपडे धोने पडते, झूठे बर्तन मलने पडते यहाँ तक कि उसकी जूतियाँ भी साफ करनी पडती।

चरक की अत्यन्त दुर्दशा थी, किन्तु दुष्प्रवृत्तियो के कुसस्कारो का प्रभाव अब भी उसमे शेष था। वह नीयत का बडा खोटा था। उसके मन मे सदा ही छल-कपट बसा रहता था। एक अर्द्धरात्रि को जब सर्वत्र अन्धकार और सन्नाटा छाया हुआ था उसकी दुरात्मा जाग रही थी। आज वह इस सम्पन्न नर्तकी के घर पर हाथ साफ करना चाहता था। वह उठा और नर्तकी के सारे मूल्य-वान आभूषणो को एकत्रित कर उन्हे एक पोटली मे बाँध कर चल दिया। सयोग से प्रहरी की नजर पड़ गयी। उसके शोर से सब लोग जाग पडे और चरक रगे हाथो पकड़ा गया। इस बार भी उसकी खूब दुर्दशा हुई। मुँह काला कर, गधे पर बिठाकर उसे सारे गाँव मे घुमाया गया। जो कोई देखता-सुनता, उस पर थू-थू करता। वह सभी के लिए घृणा का पात्र हो गया था।

कनकश्री! मेरा विश्वास है कि तुम चरक की इस दुर्गति का कारण भली-भाँति समझ गयी होगी। यह प्रसग मेरे जीवन मे

वडा महत्व रखता है। मैंने इससे वहुत कुछ सीखा है। क्या इस कथा को हृदयगम करके भी मैं अपनी आत्मा के साथ निष्ठाहीनता का व्यवहार कर सकता हूँ। जव मेरा मन, मेरी आत्मा इन सासारिक सुखो से दूर रहने का आदेश दे रही है, तो भला मैं इनकी ओर कैसे वढ सकता हूँ। मुझे दृढ विश्वास है कि जो मार्ग मैंने चुना है, वही मेरे लिए कल्याणकारी है। कनकश्री मेरा तो तुम्हारे लिए भी यही आग्रह है कि इन मिथ्या भौतिक सुखो के जजाल से मुक्त होकर मोक्ष के उस अक्षुण्ण सुख के लिए लौ लगा लो, और उसे प्राप्त कर अपना मानव-जीवन सार्थक वनाओ।

इतना कहकर जम्बूकुमार तो मौन हो गये, किन्तु कनकश्री की आत्मा मे द्वन्द्व मच गया। वह अपने पूर्वमत पर दृढ नही रह सकी। उसने सोचा कि सुमार्ग पर अग्रसर होने मे जम्बूकुमार के लिए बाधक वनने का प्रयत्न करना भी उसके लिए पाप है। सच्चे ज्ञान के आलोक से उसका मन दीप्त होने लगा और वह कुमार की प्रेरणादायिनी वाणी से प्रभाव से नतमस्तक हो गयी। कनकश्री मन-ही-मन निश्चय करने लगी कि स्वामी का मार्ग ही श्रेयस्कर है और मुझे भी उनका अनुसरण करना चाहिए।

□

१३ : दुस्साहसी बाज की कथा :
रूपश्री का प्रयत्न

एक-एक कर जम्बूकुमार की छ पत्नियाँ अपने प्रयत्नो मे पराजित हो गयी थीं और अपनी विचारधारा को त्यागकर कुमार के व्रत का औचित्य स्वीकार कर चुकी थी। किन्तु अब भी रूपश्री और जयश्री के मन मे प्रयत्न कर लेने का उल्लास था। प्रथमत रूपश्री जम्बूकुमार के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगी कि स्वामी ! मैं अपने सशक्त तर्क द्वारा आपको अवश्य ही प्रभावित कर लूंगी। अन्यो की भाँति आप मुझे अपने विचारो से नही डिगा पायेंगे। हे कुमार ! आपने विरक्त हो जाने का व्रत तो धारण कर लिया है, किन्तु साधना-मार्ग की कठिनाइयो और जटिलता से आप अपरिचित है। मेरा विचार है कि इसी कारण आपने बड़ी ही सुगमता के साथ यह निश्चय कर लिया है। आपकी इस मृदुल काया उस दुर्गम पथ के योग्य नही है। उस कठिनतर मार्ग पर यात्रा का विचार आपको अब भी त्याग देना चाहिए। सुखो की शीतल बयार मे खिली कली-सा आपका जीवन तपस्याओ की तपती धूप मे झुलस जायगा स्वामी ! साधना का मार्ग आपकी शक्ति के परे है और जो अपने सामर्थ्य से कही ऊँचा लक्ष्य निश्चित कर लेता है—उसका यह दुस्साहस ही उसका सर्वनाश कर देता है। 'आधी छोड जो पूरी को धावे—वह आधी भी खोवे और न पूरी

पावे' वाली दशा को आप क्यो प्राप्त करना चाहते है । कुमार ! अव भी समय है, सचेत हो जाइये और अपने सुखमय जीवन को यो नष्ट मत कीजिए। एक कथा मे इसका सुन्दरता के साथ चित्रण मिलता है कि किस प्रकार एक वाज पक्षी को अपने दुस्साहस का दुष्परिणाम भोगना पडा। आज हे स्वामी ! मैं आपको उस वाज की कथा सुनाती हूँ।

किसी वन मे एक वाज पक्षी निवास करता था। वह वन अत्यन्त सघन था और अनेक छोटे-वडे पशु-पक्षी इसमे रहा करते थे। अत. वाज की उदरपूर्ति यहाँ विना किसी विशेष प्रयत्न के ही हो जाया करती थी। वह सुख-चैन से जीवन-यापन कर रहा था। अपना भक्ष्य यहाँ उसे यद्यपि सुगमता से सुलभ हो जाता था, तथापि उदरपूर्ति के लिए कुछ प्रयत्न तो करना ही पड़ता है। और यह वाज वडा आलसी था। उसे तो विना परिश्रम के ही खाद्य प्राप्त कर लेने की इच्छा वनी रहती थी।

वाज की यह कामना भी एक दिन पूरी हो गयी। सयोग मे एक दिन धूप की तेजी से त्रस्त होकर शीतलता की खोज मे वह एक कन्दरा मे घुस गया। वहाँ पहुँचकर वह विश्राम करने ही लगा था कि एक सिंह पर उसकी दृष्टि पडी, जो भूमि पर पडा गहरी निद्रा का आनन्द ले रहा था। सिंह ने अपना मुख खोल रखा था जिसमे वडे-वडे पैने दाँत चमक रहे थे। अब से पूर्व वह शेर के दाँत नही देख पाया था अत समीप के एक शिला खण्ड पर वैठ कर वह सिंह के दाँतो को ध्यान से देखने लगा। तभी उसने देखा कि सिंह के दाँतो मे मांस के वडे-वडे टुकडे उलझे हुए

है । आपने आहार को पाकर उसका मन ललक उठा । बड़ी साव-धानी से वह अपनी पैनी चोंच का उपयोग कर सिंह के दाँतो मे फँसे माँस को निकाल-निकाल कर खाने लगा । उसे बडा आनन्द आया और विशेषता यह थी कि इस आहार के लिए उसे कोई प्रयत्न नही करना पड़ा—न झपटना पड़ा और न प्राणियो का शिकार करना पडा । उस आलसी के लिए तो मानो नौ निधियाँ ही मिल गयी । वह बड़ा प्रसन्न हुआ । अन्धे को एक आँख के सिवाय और क्या चाहिए !

अब तो प्रतिदिन का उसका यही क्रम हो गया था । शेर तो वड़ा पराक्रमी था । रात्रि को वह शिकार की खोज पर निकला करता था । मनोनुकूल आखेट और आहार करता और दिन भर इस कन्दरा मे विश्राम करता और बाज उसके दाँतो मे लगे माँस को निकाल-निकाल कर अपना पेट भर लिया करता । किन्तु कितना जोखिम का काम था यह । और बाज था कि इस खतरे की ओर उसने कभी ध्यान ही नही दिया कि शेर कभी भी उसी को चटनी वना सकता है । अब बाज भी प्राय. सुस्ताता रहता । उसके अन्य मित्र पक्षियो ने देखा कि आजकल वह न शिकार करता है, न ही वह उनके साथ रहता है । कई मित्रो ने इसके कारण की खोज की । जब उन्हे 'बाज के इस नये कार्यक्रम की जानकारी हुई, तो उन्होने उसे समझाया कि क्यो व्यर्थ ही मृत्यु को निमन्त्रित करता है । अब भी तुझ मे पर्याप्त शक्ति है । अपना शिकार स्वय किया कर और शेर के मुँह मे अपना मुँह मत डाल । शेर तो साक्षात् मौत का अवतार है । उससे दूर

रहना ही अच्छा है। हमारी बात मानले, नहीं तो एक ही क्षण मे तेरी जीवन-लीला इस प्रकार समाप्त हो जायगी कि तुझे अपनी भूल पर पछताने का अवसर भी मिल नही पायगा। इन भाँति-भाँति के प्रबोधनो का बाज पर कोई भी प्रभाव नही हुआ। आलसी के लिए सत्कर्म और सन्मार्ग की कोई प्रेरणा प्रभावकारी नही हो पाती। बाज मे भी कोई परिवर्तन नही आया।

बाज के मित्रो का विचार सही था। एक दिन शेर के दाँतों मे से माँस निकालने मे बाज व्यस्त था। किसी दाढ मे माँस का कुछ बड़ा टुकडा फँसा हुआ था। वह उसे निकालने का प्रयत्न कर रहा था, लेकिन टुकड़ा बड़ी मजबूती से फँसा हुआ था। और बार-बार वह उसकी चोच की पकड़ से छूट जाता था। वह उसका मोह भी नही त्याग पा रहा था, टुकडे का असामान्य आकार उसके लोभ को भडका रहा था। अब की बार जब उसने अपनी चोंच का प्रहार भरपूर शक्ति से किया तो दुर्भाग्यवश चोच शेर के जबड़े मे जा लगी। शेर चौक कर उठ बैठा। बाज का तो काल ही जाग पडा। शेर का क्रोध प्रचण्ड हो गया। उसने देखा कि एक बाज पास बैठा थर-थर काँप रहा है—तो उसके हृदय का प्रतिहिंसा का भाव और भी प्रबल हो उठा। वह इस उद्दण्ड पक्षी को कैसे क्षमा कर देता! एक ही प्रहार मे उसने बाज का काम तमाम कर दिया।

अपनी इस कथा को समाप्त कर रूपश्री अपने प्रयोजन स्पष्ट करने के लिए कहने लगी कि कुमार! बाज को अकाल मृत्यु का ग्रास इस कारण बनना पड़ा कि उसने अपनी शक्ति, क्षमता और

सामर्थ्य से परे की कामना की थी। वह यह सोच ही नही पाया कि जो काम मैं कर रहा हूँ इसमे आने वाली समस्याओ और खतरो का सामना करने की शक्ति मुझ मे नही है। वह तो प्राप्त हो रहे सुख के लोभ में अन्धा ही हो गया था। हे स्वामी ! मैने यह कथा विशेषतः चुनकर सुनायी है, क्योंकि आपकी प्रवृत्तियो और बाज की प्रवृत्तियो मे मुझे समानता लगी है। आप भी बिना ही अपनी क्षमता को तौले चल पडे है—इस कठोर पथ पर। कच्चे सूत से कही पानी का भरा घडा कूए से बाहर खीचा जा सकता है? घडा गिर पडेगा, प्यास ज्यो की त्यो रह जायगी और सूत टूट जायगा। सुनिये, मेरी विनय पर ध्यान दीजिए और आत्मरक्षा के लिए ही सही, किन्तु अपने इस गृहत्याग के संकल्प को विसर्जित कर दीजिए। अपने प्राणो से मत खेलिये, स्वामी !

इस अनुनय के साथ जब रूपश्री ने अपना कथन समाप्त किया तो उसे भी विश्वास था कि अवश्य ही वह अपने प्रयत्न मे सफल हो जायगी और कुमार अपने नये मार्ग से पलट कर पारिवारिक जीवन के प्रति अनुरक्त हो जायेंगे। उसका यह विश्वास उसकी मुखमुद्रा पर स्पष्ट झलक आया था। इस बार जम्बूकुमार गम्भीर चिन्तन की मुद्रा मे नही थे अतः रूपश्री का बिश्वास दृढतर होता जा रहा था।

□

१४ : सुबुद्धि और राम-राम मित्र की कथा

अपनी अन्य सखियो की भाँति शीघ्र ही रूपश्री का अनुमान भी मिथ्या सिद्ध हो गया। वाज की कथा का जो प्रभाव रूपश्री चाहती थी, वह जम्बूकुमार पर रचमात्र भी नही हुआ था। कुमार ने रूपश्री की मान्यता का प्रतिवाद किया और गम्भीरता के साथ ही कहने लगे कि प्रिये रूपश्री ! सुनो, तुमने वाज पक्षी की कथा मुझे सुनायी और तुमने इसकी दुर्दशा का कारण भी बताया कि दुर्वल प्राणी होकर भी उसने शेर के मुँह मे मुँह डालने का अभ्यास बना लिया। तुम्हारे ही शब्दो मे मैं इस प्रकार तुम्हारी बात दुहराता हूँ कि उसने अपनी क्षमता से बाहर के काम मे हाथ डाला किन्तु नही... ....रूपश्री नही... ....वाज की दुरवस्था का मूल कारण यह नही था। तनिक ध्यानपूर्वक इस कथा पर विचार करने पर तुम भी इस निष्कर्ष पर पहुँच जाओगी कि बाज के मन मे विना परिश्रम माँस पा लेने की जो एक लिप्सा थी, उसी के दुष्परिणाम स्वरूप उसे मृत्यु का ग्रास होना पडा। लिप्साएँ क्या-क्या अनर्थ नही कराती और कैसे-कैसे भयानक परिणाम तथा कष्ट नही देती। अब तनिक यह सोचो कि क्या अब भी उस लोभी वाज मे और मुझ मे कोई साम्य है ? स्पष्ट है कि मेरा जो नया व्रत है, उससे मै किसी लिप्सा को तुष्ट करने का उद्देश्य नही रखता। लोभ-मोह आदि कुप्रवृत्तियो से तो मैं पहले ही दूर हो गया हूँ। मैं

तो उस चरम स्थिति को प्राप्त कर लेने का अभिलाषी हूँ जो चिर शान्ति और सुख की दात्री है। मेरे इस चुनाव को किसी भी प्रकार तो बाज के चुनाव से समकक्षता नही दी जा सकती ! फिर उसकी दुर्दशा का चित्रण कर तुम मुझे भयभीत करने का प्रयत्न क्यो कर रही हो ? मेरा चुनाव पवित्र है और इन प्रयत्नो के परिणाम भी निश्चित ही सुखद और सौभाग्यपूर्ण होगे, मगलकारी होंगे। तुम मुझे इस मार्ग से मोडकर पुन: सासारिकता की ओर ले जाना चाहती हो, किन्तु रूपश्री ! मुझे जीवन के उस प्रवचनापूर्ण स्वरूप मे रस नही आता। ये सासारिक सुख आत्मा के लिए घातक है। ससार मे कोई भी किसी का नही होता। माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, स्वजन-परिजन किसी को किसी के हित की कामना नही होती। सभी तो यहाँ स्वकेन्द्रित है। सभी अपने-अपने ही लाभ के लिए, स्वार्थ के लिए इन सम्बन्धो के निर्वाह मे लगे रहते है और न तो मेरे मन मे किसी स्वार्थपूर्ति की कामना है, न मैं किसी से छले जाने के लिए तत्पर हूँ। ऐसी स्थिति मे मैं उस त्यक्त और दूषित जागतिक जीवन की ओर कैसे उन्मुख हो सकता हूँ। लोक व्यवहार की इस पद्धति के बारे मे मैं रूपश्री ! तुम्हे एक कथा के माध्यम से आश्वस्त कराना चाहता हूँ, सुनो !

किसी समय अत्यन्त उदार विचारो और परिपक्व बुद्धि का एक व्यक्ति था जो सदा सत्कर्मों मे ही प्रवृत्त रहा करता था। उसका नाम था—सुबुद्धि। सुबुद्धि राजा अजितशत्रु का प्रधान अमात्य था। वह अपने दायित्वो के निर्वाह मे सदा जागरूक रहा करता था।

अन्याय और अशुभ कर्मों मे वह सदा दूर रहा करता था । दीन-हीनो का वह वन्धु था और असहायो का सहायक । राजा अजित-शत्रु अपने प्रधानामात्य के इन सद्गुणो मे वडा प्रभावित था और उसका आदर भी वहुत किया करता था । वर्षो तक सुवुद्धि अपने शुभ आचरण और लोकहित के कार्यों द्वारा यश प्राप्त करता रहा । लेकिन रूपश्री ! किसी का भी समय सदा एकसा नही रहता । समय के फेर का शिकार सुवुद्धि को भी एक दिन होना ही पडा ।

हुआ यो रूपश्री ! कि न जाने क्यो सुवृद्धि के प्रति राजा की धारणा परिवर्तित हो गयी । अव वह प्रधान अमात्य पर रुष्ट हो गया था । जव राजा ही रूठ जाय तो उसके राज्य मे किसी की कुशल कैसे रह सकती है ? और राजा अजितशत्रु तो इतना कुपित था कि उसने सुवुद्धि को मृत्युदण्ड ही सुना दिया । उसे शूली पर चढाने की आज्ञा दे दी गयी । अव तो सुवुद्धि अपने प्राणो की रक्षा के लिए चिन्तित हो गया । उसने निश्चय किया कि अव वह प्राण गँवाने के स्थान पर लुक-छिपकर जीवन व्यतीत करेगा । इस विचार को क्रियान्वित करने के लिए वह वनो मे भाग गया । ३-४ दिन मे ही उसे जीवन के कठोर यथार्थ का पता चल गया । वह वन की कठिनाइयो से व्याकुल हो गया, उसे भूख वेहद सताने लगी । निदान, एक आधी रात को वह नगर मे लौट आया और अपने ही घर पहुँचा । वह धीरे-धीरे द्वार खटखटाने लगा । वह भयभीत था कि कही पडोसियों की नजर उस पर न पड जाय ।

यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है रूपश्री ! कि उसने अपने मित्रो-सहचरो को तीन कोटियो मे वर्गीकृत कर रखा था—

नित्यमित्र, पर्वमित्र और राम-राम मित्र। नित्यमित्र मानता था वह अपने शरीर को और अपनी अर्धांगिनी अर्थात् धर्मपत्नी को, जिनका सुख-दु:ख एक ही हुआ करता है। एक का सुख दूसरे के लिए दु ख का कारण नही हो सकता और एक को दुखी पाकर दूसरा कभी सुखी नही रह सकता। यही नही, नित्य ही निर्वाहित होती रहने वाली मैत्री के अधीन दोनो एक-दूसरे की सहायता के लिए भी वचनबद्ध होते है। अन्य स्वजन-परिजनो, सहयोगियो, मित्रो आदि को वह पर्वमित्र मानता था जिनकी मैत्री का आभास समय-समय पर, उचित अवसरो पर ही होता था। इसके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति होते है जिनके साथ का परिचय केवल अभिवादन विनिमय 'राम-राम' तक ही सीमित रहता है।

हाँ तो रूपश्री! जब सुबुद्धि ने उस आधी रात मे अपने घर का द्वार खटखटाया तो मीठी नीद का आनन्द लेती हुई उसकी पत्नी को बड़ा रोष आया। यह आधी रात को कौन आ मरा......है कौन यह........आदि बड़बड़ाती हुई जब उसने द्वार खोला तो अपने पति को खडा देखकर उसकी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे ही रह गयी। वह मात्र इतना ही कह पाई कि तुम यहाँ क्या लेने आये हो? भगवान के लिए यहाँ से .। बीच ही मे सुबुद्धि बोल पडा कि प्रिये! तुम मेरी नित्यमित्र हो। इस आडे समय मे मै तुम से ही तो सहायता की अपेक्षा रख सकता हूँ। राज कर्मचारी मेरी खोज मे हैं। वे मुझे पकडकर शूली पर चढा देना चाहते हैं, किन्तु मैं मरना नही चाहता. प्रिये! मै मरना नही चाहता। मैं तुम से अपने प्राणो की भीख

मांगता हूं। मेरी रक्षा करो। मुझे घर मे छिपा रखो। कोई तुम पर सन्देह भी नही कर पाएगा। पति को टका सा उत्तर देती हुई पत्नी कहने लगी कि तुमको अपने कर्मों के कारण ही दण्ड मिला है—उसे तुम ही भोगो। मुझे और मेरे बच्चो को उसमे भागीदार मत बनाओ। अपने दुर्भाग्य की छाया से तुम हम लोगो का जीवन दुःखमय बनाना चाहते हो, किन्तु मैं ऐसा नही होने दूंगी। तुम्हे आश्रय देकर मैं राजा की कोपभाजन नही बनना चाहती। अगर हमारी सम्पत्ति राजा ने छीन ली तो हमारा निर्वाह कैसे होगा ? नही . ...नही .... इस घर मे तुम्हे शरण नही मिलेगी। और रोष के साथ पत्नी ने एक झटके से द्वार बन्द कर लिया और कुडी चढा ली। कुडी की आवाज ने सुबुद्धि के मन मे वितृष्णा भर दी। इस पवित्र मित्रता का आधार भी केवल स्वार्थ पूर्ति है—यह उसने कभी सोचा भी नही था। उसने अपने नित्यमित्र द्वारा ऐसे उपेक्षापूर्ण व्यवहार की कल्पना भी नही की थी। घोर दुःख से वह क्षण मात्र ही मे जर्जर हो गया। उसके चरणो मे शक्ति नही रह गयी थी—आगे बढने की किन्तु अन्य चारा ही क्या था। वह निराश होकर वहां से हट गया।

तब वह एक-एक करके अपने अनेक अन्य मित्रो-परिचितो के यहां गया। सभी ने उसे निराश किया। कोई भी उसकी सहायता करने, उसे अपने यहां आश्रय देने को तत्पर नही हुआ। सभी उसके सुख के ही साथी थे—पर्वमित्र जो ठहरे। दुर्भाग्य के समय मे सुबुद्धि का साथ देकर कोई भी अपने लिए मुसीबत खडी कर लेने का साहस नही कर सका। सच्चा मित्र तो मित्र की

सहायता के लिए प्राणो की बाजी लगाने मे भी पीछे नही रहता। किन्तु सुबुद्धि के नित्यमित्र ने भी जब अपना कर्तव्य नही निभाया, तो इन पर्वमित्रो से क्या आशा रखी जा सकती थी !

विपत्ति का मारा बेचारा सुबुद्धि दर-दर की ठोकरे खाकर सर्वथा हताश हो गया। वनों की ओर लौट जाने के अतिरिक्त उसके पास अब कोई उपाय शेष नही बचा था। वह लुकता-छिपता नगर ने बाहर निकल जाना चाहता था, तभी उसे अपने एक राम-राम मित्र का स्मरण हो आया। सहसा उसके मन मे आशा की एक किरण जगमगा उठी। वह लौट पड़ा और शीघ्रता के साथ उस मित्र के द्वार पर पहुँच गया। यह एक सेठ था। खटखटाये जाने पर जब सेठ ने द्वार खोला तो सुबुद्धि को देखकर वह हर्षित हो उठा। स्वागतपूर्वक उसने सुबुद्धि को घर के भीतर लेकर सावधानी से द्वार बन्द कर लिया। आदरपूर्वक उसने सुबुद्धि को आसन दिया और तब वह कहने लगा कि राजा के रुष्ट हो जाने पर मैं आपके लिए बडा चिन्तित था। मैं यह भी जानता हूँ कि राजा का क्रोध अस्थायी है, किन्तु मृत्युदण्ड का जो निर्णय उसने दिया है—उससे यह राज्य तो एक योग्य अमात्य को सदा-सदा के लिए खो देगा। फिर भले ही राजा लाख पछताए, उसका दरबार ऐसे नर-रत्न से सुशोभित नही हो सकता। यही कारण है कि मैं आपके जीवन के प्रति चिन्तित था। कुछ ही समय मे सब कुछ ठीक-ठाक हो जायगा—वर्तमान सकट का चतुराई और धैर्य के साथ सामना करने की ही बात है। आपने यह अच्छा ही किया कि अदृश्य हो गये। अब आप कही नही जायेंगे। मेरा घर ही आप

परित्र करते रहिये। मैं तो आपकी सेवा करके धन्य हो जाऊँगा। अहोभाग्य है कि देश की एक धरोहर की रक्षा करने का अवसर मुझे मिला है। यहाँ आपको न कोई कष्ट होगा, न भय। आप यहाँ निश्चिन्त रहिये।

सुबुद्धि को अपने इस राम-राम मित्र की सदाशयता पर सुखद विस्मय हो रहा था। जिनके साथ उसने जीवन व्यतीत किया, जिनके हित मे वह निरन्तर व्यस्त रहा—उनमे से किसी एक ने भी उसकी सहायता नही की। और यह सेठ उस पर सर्वस्व न्योछावर कर रहा है। इसके साथ उसका मात्र राम-राम (नमस्कार) का ही तो सम्पर्क रहा है। मुझसे इसकी न तो कोई स्वार्थपूर्ति अब से पूर्व हुई है और न ही इसे इसकी अब कोई आशा है। यही नही, अपितु इसने तो अपने लिए एक आपदा खडी कर ली है। सुबुद्धि ने अपने इस राम-राम मित्र के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया और छिप कर उसके यहाँ रहने लगा। यह सहायता भी सेठ ने स्वेच्छा से की थी। इसके लिए सुबुद्धि को आग्रह नही करना पड़ा। स्वार्थहीनता और मानवीय दृष्टि-कोण के कारण यह मित्र सुबुद्धि के लिए आदर और श्रद्धा का पात्र हो गया था।

कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये। राजा को सुबुद्धि का कुछ पता न चला। उसकी खोज भी बन्द हो गयी और राजा का क्रोध भी ठण्डा हो गया। तब वडी चतुराई के साथ इस सेठ ने राजा के सामने सारी स्थिति को स्पष्ट की और सिद्ध हो गया कि सुबुद्धि निष्कलक है, निरपराध है। उसने राजा द्वारा उसके

दण्ड की आज्ञा को भी निरस्त करवा दिया और तब एक दिन राजा के समक्ष उसने सुबुद्धि को उपस्थित कर दिया। राजा अपने कुशल प्रधान अमात्य को देखकर बडा प्रसन्न हुआ और उसे गले लगा लिया। वह सेठ के प्रति भी आभार व्यक्त करने लगा कि सुबुद्धि को छिपाकर उसने देश के प्रति बडा मारी उपकार किया है। उसने प्रधान अमात्य की तो रक्षा की ही साथ ही राजा को भी एक पाप से बचा लिया है, नही तो वह तो सुबुद्धि को शूली पर चढ़ा देने को उद्यत हो ही गया था। राजा ने सुबुद्धि को उसका छिना हुआ पूर्व गौरव लौटा दिया। अब सुबुद्धि पुन. प्रधान अमात्य बन गया और पूर्व की अपेक्षा अनेक गुनी प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हो गयी थी। राजा भी उस सेठ के प्रति उपकृत था। उसने उसे विपुल धनराशि के साथ पुरस्कृत और सम्मानित किया।

अब प्रधान अमात्य का मित्रता सम्बन्धी दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया था। सच्ची मैत्री का लक्षण उसने अपने इस राम-राम मित्र, सेठ मे पाया था। अतः अब वह उसका सच्चा और अन्तरग मित्र हो गया। नित्यमित्र अपनी धर्मपत्नी और अन्य पर्वमित्रो के प्रति उसके मन मे स्नेह का भाव शेष नही रह गया था।

सुबुद्धि की कथा समाप्त करते हुए जम्बूकुमार ने रूपश्री को सम्बोधित करते हुए कहा कि क्या तुम अब भी सासारिक सबधो के यथार्थ स्वरूप को नही समझ पाई हो ? मैं स्वार्थाधारित इन जगत-व्यवहारो को अच्छी तरह पहचान गया हूँ और इनके पाश

मे स्वय को आवद्ध नही कर पाऊँगा । ये सम्बन्ध मेरे लिए तभी तक वने रहेंगे जब तक अन्य लोगो की स्वार्थपूर्ति की क्षमता मुझमे वनी रहेगी । फिर तो सभी सम्बन्ध स्वत. ही विच्छिन्न हो जायेंगे । फिर मैं ही आगे होकर उनमे मुक्त क्यो न हो जाऊँ यही सोचकर मैंने सासारिकता और परिवार को त्यागकर आत्मकल्याण के मार्ग को अपनाने का निश्चय किया है। वस्तुतः इसी मे मेरा मगल निहित है। और मेरे लिए ही क्या, यह मार्ग तो सबके लिए मगलदायी है। इस मार्ग पर चलकर किसी को पछताना नही पड़ता। यह वह साधन है, जो मानव जीवन की श्रेष्ठतम उपलब्धि प्रदान करता है। रूपश्री ! तुमको भी अपने अज्ञान और भ्रम से मुक्त हो जाना चाहिए। मानव जीवन वार-वार नही मिलता। इस वार मिला है तो इसका सदुपयोग कर लो, आत्म-कल्याण के उद्यम मे इसे लगा दो। अन्य किसी जीवन मे यह अवसर नही मिल पाएगा। रूपश्री ! मैंने खूब सोच-समझकर इस मार्ग को अपनाया है और मैं तुम्हारा भी कल्याण चाहता हूँ। सोचकर देखलो··· · · इस दिशा मे तुम्हारा कोई अहित नही होगा।

जम्बूकुमार तो इस प्रकार का आग्रह अब कर रहे थे, जबकि रूपश्री का हृदय कभी का अभिभूत हो चुका था। सुबुद्धि के प्रसग से सासारिक नाते-रिश्तो के प्रति उसके मन मे विकर्षण का भाव उदित हो गया था और वह भी उन्हे व्यर्थ मानने लगी थी, त्याज्य मानने लगी थी। जम्बूकुमार का कथन समाप्त होते-होते रूपश्री ने उनके चरणो मे अपना मस्तक टिका दिया।

१५ : ब्राह्मण-कन्या की कथा : जयश्री का प्रयत्न

जम्बूकुमार को गृहस्थ बनाये रखने की दिशा मे उनकी सात नवविवाहिता पत्नियाँ तो अपने प्रयत्नों मे विफल हो गयी थी, किन्तु आठवी पत्नी जयश्री अब भी शेष थी। अपनी ७ सहेलियो की पराजय के कारण भी उसके चित्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही था। वह अपने अमन्द उत्साह के साथ कुमार को सम्बोधित करके कहने लगी कि कुमार! अब बारी मेरी है। मुझसे पार पाना कठिन होगा। मै अकेली ही अपनी ७ बहनो के पराजय का दु:ख दूर कर देने को पर्याप्त हूँ।

अनुद्विग्नता के साथ जम्बूकुमार अधखुली आँखो से जयश्री की ओर निहारने लगे। कुछ पल मे वे बोले कि तुम जयश्री हो तुम्हारे विजय के विश्वास के पीछे कही तुम अपने नाम का आधार तो नही मान रही हो? और कुमार कुछ मुस्कराकर पुन. गम्भीर हो गये। वे बोले कि जयश्री! स्वस्थ विचार-विमर्श तो सदा ही लाभकारी रहता है। मैं तुम्हारे कथन को भी समझने के लिए तत्पर हूँ। उसमे यदि ग्रहण करने योग्य कोई तत्त्व मिला तो उसे भी अवश्य ग्रहण करूँगा। कहो जयश्री! तुम्हारा क्या मन्तव्य है?

कुमार! मै बडी देर से देख रही हूँ कि आपको अपना विचार ही प्रिय लगता है। अपनी धारणा के प्रति आपके मन मे दृढ,

दुराग्रह भरा हुआ है और इसी कारण अपने विचारो के अतिरिक्त और किमी के विचार मे आपको मत्य अथवा औचित्य प्रतीत ही नही होता। आपने अपने माता-पिता के आग्रह को भी अस्वीकार कर दिया और गृह-त्याग के निश्चय पर आप अटल है। अन्य स्वजन-परिजनो ने भी तर्क प्रस्तुत किये और अभी मेरी ७ वहनें भी प्रयत्न कर चुकी है, किन्तु ऐसा आभास होता है कि स्वामी ! आपको अपने दृष्टिकोण के प्रति मोह हो गया है। यह मोह आप को उचित निष्कर्ष तक नही पहुँचने देता है। यह धारणा छोड़िये कि अन्य किसी की वाणी मे सार तत्त्व है ही नही। तभी.... तभी आप मगलदायी निश्चय कर पायेंगे। आपके इस दुराग्रह को देख कर मुझे एक कहानी स्मरण आ गयी है। यदि आप अनुमति दे तो, वह कहानी सुनाऊँ।

जम्बूकुमार ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए कहा जयश्री ! सुनाओ, मैं ध्यान से सुनूँगा और उसके पश्चात् ही मैं अपना मत व्यक्त करूँगा। जयश्री ने उत्साहित होकर कथा आरम्भ की—

हे स्वामी ! सुदीर्घ अतीत की वात है, एक नगर था—श्रीपुर। श्रीपुर का राजा वडा नैष्ठिक था, धर्मानुरागी था। वह प्रजा-वत्सल और न्याय प्रिय राजा था। उसके नित्यनियम का अनिवार्य अग था—धर्म-कथाओ का श्रवण। जव तक वह कथा नही सुन लेता, तव तक अन्न-जल ग्रहण नही करता था। हाँ, उसके कथा-श्रवण के सम्बन्ध मे एक और उल्लेखनीय विशेपता थी कि प्रति-दिन वह नये-नये कथावाचको को निमन्त्रित करता था। इस

प्रकार धर्म और नीति के क्षेत्र मे विभिन्न दृष्टिकोणो से वह परिचित हो जाना चाहता था।

राजा ब्राह्मणो का बडा आदर किया करता था। कथावाचको का वह श्रद्धापूर्वक स्वागत करता था, भक्तिपूर्वक उनसे कथा-श्रवण करता और पर्याप्त दान-दक्षिणा देकर उन्हे विदा करता था। श्रीपुर के ब्राह्मणो को इस हेतु क्रम-क्रम से निमन्त्रण मिलता रहता था। बड़ी उत्सुकता से ब्राह्मण जन अपनी बारी की प्रतीक्षा किया करते थे। श्रीपुर मे एक ब्राह्मण ऐसा भी था जो बेचारा निरक्षर था। कथावाचन तो क्या—कभी उसने कथा-श्रवण भी नही किया था। जब उसे कथावाचन के लिए राजकीय निमन्त्रण मिला, तो वह घबरा गया। अपनी अक्षमता उसके समक्ष सबसे बडी बाधा थी। वह बडा चिन्तित था कि क्या किया जाय। राजाज्ञा की अवमानना भी नही की जा सकती और यदि वह आज्ञा का पालन करता है तो राजभवन मे जाकर वह सुनाएगा क्या! इस विपम परिस्थिति के कारण वह बडा दु खी हो रहा था। इस ब्राह्मण की पुत्री बड़ी ज्ञानवती थी। उसके पिता को चिन्ताग्रस्त देखकर इसका कारण पूछा और पिता ने सारी समस्या बता दी। पुत्री क्योकि बडी कुशाग्रबुद्धि की थी, उसने तुरन्त ही एक समाधान खोज निकाला। यह समाधान पिता को भी स्वीकार्य लगा और अब उसके चित्त मे सन्तोप और शान्ति थी।

दूसरे दिन राजभवन मे नित्य की भाँति कथाश्रवण के लिए यथासमय समस्त प्रबन्ध कर लिया गया। राजा अपने आसन

पर बैठ गया था और कथावाचक की प्रतीक्षा की जा रही थी। सभी लोगो के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब उन्होने देखा कि किसी पण्डित के स्थान पर एक कन्या आज कथावाचन के लिए आई है। यह वही ब्राह्मण-कन्या थी। अब से पूर्व कोई महिला इस हेतु नही आयी थी। राजा ने भी देखा, तो कुतूहल मे पड गया। शास्त्रीय असगति न होने के कारण कन्या को लौटा देना तो उसे उचित प्रतीत नही हो रहा था, किन्तु उसके मन मे इस वाचिका के प्रति योग्यता सम्बन्धी सन्देह अवश्य था। यह सन्देह का भाव राजा की आँखो मे तैर आया था। उसके नेत्र मानो कन्या से प्रश्न करने लगे थे कि क्या तुम कथा सुना सकोगी? राजा की वाणी ने नेत्रो की और भी पुष्टि कर दी। उचित स्वागत सत्कार के पश्चात् जब ब्राह्मण-कन्या अपने आसन पर बैठी तो राजा ने उससे यही कहा कि हमे कथा सुनाने के लिए तो आई हो, किन्तु कोई आदर्श और नीति पूर्ण कथा सुनाना और बड़े ढग से सुनाना। ऐसा न हो कि ....। राजा की बात को बीच ही मे काटकर कन्या ने उसे आश्वस्त किया कि मेरी प्रतिभा और योग्यता मे सन्देह मत कीजिए महाराज! आपने अनेक वाचको मे अनेक कथाओ का श्रवण किया है, किन्तु मैं आपको आज जो कथा सुनाऊँगी उसमे आपको अपूर्वता का ही अनुभव होगा। एक नवीनता का आभास आपको उसमे होगा।

राजा ने आश्वस्त होकर कन्या से कहा कि अच्छी बात है। फिर कथा आरम्भ करो। कन्या ने कथा आरम्भ की—सुनिये महाराज! मेरे पिता मेरे प्रति गहन वात्सल्य का भाव रखते है।

अपने माता-पिता की मैं एक मात्र सन्तान हूँ अत प्रारम्भ से ही उनके समस्त स्नेह की पात्र मैं ही रही हूँ। पिताजी ने मेरी शिक्षा दीक्षा की भी बडी उत्तम व्यवस्था की और उसी के परिणाम स्वरूप मै आज ....। खैर आत्म-प्रशसा मुझे शोभा नही देगी, किन्तु यह सत्य है कि जब मैं पर्याप्त आयु की हो गयी तो माता-पिता को मेरे भावी वियोग की कल्पना से ही दु ख होने लगा और वे कुछ उदास रहने लगे। फिर भी किसी कन्या का पिता कब तक इस ओर से आँखे बन्द रख सकता है। मेरे पिताजी को भी योग्य वर की खोज मे व्यस्त होना पड़ा। बडी दौड-धूप के पश्चात् पिताजी को अन्तत सफलता प्राप्त हो ही गयी। पिताजी ने मेरी सगाई कर दी।

जयश्री कुछ क्षण मौन रह कर पुन कहने लगी कि हे स्वामी ! जब वह ब्राह्मण-कन्या राजा को यह कहानी सुना रही थी, राजा अपना धैर्य खो बैठा। बडी देर से वह यह सोचते-सोचते उकता गया था कि कैसी कथा यह सुना रही है। कहना क्या चाहती है यह। और तब राजा चुप नही रह सका। वह बीच मे बोल पडा कि ब्राह्मण-पुत्री तुम कथा सुनाने आयी हो या विनोद करने। यह क्या ऊल जलूल ...

धीरज रखिये महाराज ! धीरज रखिये ! कथा ही तो सुना रही ही हूँ। इस कथा को समाप्ति तक तो पहुँचने दीजिए। इतना कह कर उसने पुन कथा का छोर पकडा। हाँ तो महाराज ! मेरी सगाई कर दी गयी। अभी विवाह की कोई तिथि भी निश्चित नही हुई थी कि एक साय वर मेरे घर पर आया। मैंने उसे

पहले कभी देखा ही नही था। उसने स्वय ही जब अपना परिचय दिया तो मैं लज्जा से झुक गयी। मुझे लगा कि पिताजी का चुनाव अदोष है। वर बडा सुशील और गुणवान लगा। स्वभाव से भी वह बडा कोमल था और मधुरभाषी भी। व्यवहार-कुशलता और शिष्टता मे भी पीछे न था। उस साथ उसने मुझे मधुर प्रेमालाप से आकर्षित कर लिया था। धीरे-धीरे रात उतर आयी और जब वह विदा होकर जाने लगा तो बडी चतुराई के साथ वह मेरी अलंकार-मंजूषा उठाकर ले जाने लगा। किसी प्रकार मैं इसे भाँप गयी, तो वह भागने लगा। मैं तनिक उच्चस्वर से बोलने लगी, तो मुझे डराने के लिए उसने चाकू निकाल लिया। कन्या कहने लगी कि बडा अनर्थ हो गया, महाराज! बड़ा अनर्थ हो गया। उसके हाथ मे चाकू को चमचमाते देखकर मैं तो आतकित ही हो गयी थी। किंकर्तव्यविमूढ सी कुछ क्षण तो मै सोचती रही, किन्तु यह सोचकर कि इस प्रकार काम न चलेगा—मैं आगे वढी। साहस के साथ मै उसके हाथ के चाकू को छीन लेना चाहती थी, किन्तु वह देना नही चाहता था। इसी छीना-झपटी मे चाकू उसके पेट मे घुस गया और देखते ही देखते उसके प्राण पखेरू उड गये। उसके शव को देखकर तो मैं काँप उठी। कुछ भी सोच नही पा रही थी कि अब मैं क्या करूं। सयोग से इस समय माता-पिता घर मे नही थे। मैंने साहस बटोरा और शव को पिछवाड़े ले जाकर गड्ढा खोद कर गाड दिया।

कन्या अभी और कुछ कहना चाहती थी कि राजा ने आवेश के साथ कहा—बन्द करो यह प्रलाप। कथा सुनाने के नाम पर

तुम कपोल कल्पना भरा मिथ्या प्रसग सुना कर हमारा समय नष्ट कर रही हो। कन्या ने दृढता के साथ राजा का प्रतिवाद करते हुए कहा कि महाराज! आप मेरे कथन मे असत्य का अभास पा रहे हैं, आखिर ऐसा क्यो ?

राजा— है ही यह मिथ्या और असत्य। मुझे इसमे तनिक भी सत्य प्रतीत नही होता।

कन्या—(अपने आन्तरिक रोष का दमन कर) आप तो नित्य ही कथाएँ सुनते रहते हैं। क्या वे भी सब की सब असत्य थी ?

राजा—नही वे असत्य नही थी, किन्तु तुम्हारी कथा निश्चय-पूर्वक असत्य कही जा सकती है ?

कन्या—इसका कारण ?

राजा—(मौन)

कन्या—आपका मौन इस तथ्य का प्रमाण है राजन् कि आपके पास मेरी कथा को असत्य सिद्ध करने का कोई आधार नही है। अब तक की सुनी हुई कथाओ को जब आप प्रमाण के अभाव मे असत्य नही कह सकते—तो मेरी कथा मे भी आपको सन्देह नही करना चाहिए। वे सत्य है, तो यह भी सत्य है। दोनो मे अन्तर ही क्या है ? वे भी कथाएँ है और यह भी एक कथा है।

कन्या के इस तर्क से हे स्वामी! जयश्री ने कहा कि राजा अवाक् रह गया। उसे स्वीकार करना ही पडा कि ब्राह्मण-कन्या की कथा असत्य नही है। हे स्वामी! राजा के इस आचरण मे शिक्षा लीजिए। आपको यह दुराग्रह नही पालना चाहिए कि जो कुछ आप सोचते हैं, वही सत्य है। आपको अपनी पत्नियो,

माता-पिता आदि के कथन मे भी सत्य स्वीकार करना चाहिए। अन्यथा आपका यह जो अपनी धारणा के प्रति विशेष आग्रह का भाव है, वह सही निर्णय नही लेने देगा। हमारी धारणाओ मे औचित्य का अनुभव कीजिए और परिवार तथा परिवार के सुखो को, स्वजनों को इस निर्ममता के साथ त्याग कर मत जाइये। इनका भोग आज का सत्य है। सम्भव है कि विरक्ति और सयम मे भविष्य के लिए कोई सत्य निहित हो। इस प्रकार दोनो धारणाओ मे सत्य की विद्यमानता का सकेत कर जयश्री ने अपना कथन समाप्त किया। समाप्ति के समय उसके मन मे अनुकूल प्रतिक्रिया की आशा के कारण एक उल्लास भर गया था।

□

१६ : ललितकुमार की कथा : जयश्री में वैराग्य-जागरण

जयश्री की कथा को जम्बूकुमार ने ध्यान से सुना था और उसके मर्म को पहचानकर उन्होने कहा कि जयश्री ! तुम्हे मेरे दुराग्रह के विषय मे बहुत बडा भ्रम है कि मैं अपने ही विचार को सत्य मानता हूँ और. ......। मैं तुम्हे स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि विरक्त होकर परिव्राजक बन जाने और साधना मार्ग का पथिक बनने का यह निश्चय मैंने किसी आवेश के अधीन नही किया है। मेरे दृष्टिकोण मे एकागिता नही है। मैंने तो अपनी आयु के इस चौराहे पर पहुँच कर यहाँ से जाने वाले सभी मार्गों को भलीभाँति पहचाना है। तुम ससार के जिन भौतिक सुखो मे प्रवृत्त हो जाने को मुझे प्रेरित कर रही हो उनका खूब....खूब गहराई के साथ मैंने अध्ययन किया है। उनकी वास्तविकता से मैं परिचित हो गया हूँ। जयश्री ! सुनो, ये सुख ये विषय कभी किसी के लिए हितकर सिद्ध नही हुए। ज्योही कोई एक बार सुखो की ओर आकर्षित होता है—ये उसे अपने दृढ़ बन्धनो मे ऐसा जकड़ लेते हैं कि फिर उसकी मुक्ति की कोई सम्भावना नही रहती। सुख प्राप्ति की कामना तो अनन्त है। उपलब्ध सुख पर मनुष्य सन्तोष करना नही जानता। वह तो अधिकाधिक सुखो का अभिलाषी हो जाता है। वह उनकी प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के छल-छद्म और

उचित-अनुचित प्रयत्नो मे व्यस्त हो जाता है । परिणामत उसके मानसिक जगत मे एक व्यग्रता और अशान्ति छा जाती है जो उसे विद्यमान सुखो से भी लाभान्वित नही होने देती । जयश्री ! इसके अतिरिक्त यह भी तो एक दृढ सत्य है कि ये सुख तो सुख की मात्र छाया है । जिस प्रकार स्वच्छन्द जल-विहार करती हुई मछली पानी मे अपना खाद्य देखकर ललचा उठती है और उसकी प्राप्ति की कामना से उधर लपकती भी है । उस खाद्य को जब वह सेवन करने लगती है तो उसके जबडे मे वह कॉटा फंस जाता जाता है जो उस सुन्दर, सरस खाद्य के भीतर छिपा हुआ था । असह्य वेदना से वह छटपटा जाती है और यही नही डोर के सहारे शिकारी उसे पानी से बाहर खीच लेता है । मछली तडप-तडप कर प्राण त्याग देती है। यदि वह खाद्य (सुख) की ओर आकर्षित न हुई होती तो क्या उसकी यह दुर्दशा होती । प्रत्येक सुख मे दु ख का मूल छिपा रहता है । सुख तो शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और दु ख का यही मूल अकुरित, विकसित, पल्लवित और फलित होता रहता है । ऐसे दुखद सुख भी भला कभी वरेण्य हो सकते हैं । मृगी के लिए वीणा का मधुर सगीत एक सुख है, उसमे मस्त होकर वह सुधबुध खोकर अचचल बैठ जाती है, किन्तु क्या यही सगीत उसके लिए घातक नही हो जाता ! इन सुखो के छलावो से मनुष्य जितना शीघ्र सावधान हो जाय—उतना ही श्रेयस्कर है । इस सासारिक छलावे से मुक्त होकर मनुष्य को वास्तविक और अनन्त सुख— मोक्ष के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । यह तथ्य मैने पूरी गवेषणा और सोच-विचार के वाद अपने चित्त

मे स्थिर कर लिया है। तुम्हारा अनुमान भ्रमपूर्ण है जयश्री ! कि किसी एक पक्ष मे मैं अकारण ही अहित मानकर अन्य पक्ष के प्रति बिना किसी आधार के झुक गया हूँ। ये विषय-वासनाएँ और माया-मोह निश्चित ही त्याज्य है। जो इनके लोभ मे पडकर सत्यपक्ष का विचार ही नही कर पाता; धर्म, नियम, सयम, विराग आदि का पालन नही कर पाता; आत्म-कल्याण के लिए प्रयत्नशील नही हो पाता—उसे भयानक दुष्परिणाम भोगने पडते है—इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नही है। तुम्हे भी उचित-अनुचित का निर्णय स्वय करना चाहिए और गम्भीरता से, तटस्थ बुद्धि से सोचना चाहिए। यदि तुमने ऐसा किया तो सासारिक मोह की असारता और उसके घातक स्वरूप से तुम अपरिचित नही रह पाओगी। सुनो, मैं तुम्हे इस सन्दर्भ मे ललितकुमार की कथा सुनाता हूँ।

जयश्री को पुन सम्बोधित करते हुए कुमार ने कहा कि ललितकुमार का जैसा नाम था वैसा ही उसका व्यक्तित्व भी था। बड़ा ही रूपवान, कोमल और आकर्षक था वह। जो कोई उसे देखता वह उसके मोहक रूप से प्रभावित हुए बिना नही रह पाता था। सयोग से वह एक सम्पन्न परिवार का सदस्य था, अत· उसके वैभव ने उसे विलास की असीमित सुविधाएँ दे रखी थी। परिणामत: भाँति-भाँति के साधनो द्वारा वह अपने व्यक्तित्व के उस प्रभाव को और भी अधिक अभिवर्द्धित रखता था। युवतियाँ उसके प्रति सम्मोहित सी रहती थी।

जयश्री ! यह ललितकुमार तन से जितना अधिक सुन्दर था

मन से उतना ही अधिक कुरूप था। वासना का कीड़ा ही था वह। सम्पत्ति की अधिकता के कारण जीवन उसका निश्चिन्त था और वह दुराचार मे ही व्यस्त रहता। इसी मे उसे विशेष रसानुभूति हुआ करती थी। वह लम्पट इस सुख के सामने अपने दोष को नगण्य ही मानता रहा। वह धनी था—अतः समाज मे उसकी प्रतिष्ठा थी और कोई उसके दुराचरण की ओर इगित भी नही कर पाता था।

सन्ध्या को नित्य ही स्निग्ध मूल्यवान वस्त्र धारण कर सुगधित द्रवो से सुवासित होकर, पुष्पहारादि धारण कर वह विचरण के लिए निकल जाता था। उसकी छवि पर अनेक सुन्दरियाँ मुग्ध हो जाती थी और वह भी उन्हे उपकृत ही करता था। एक साथ वह इसी प्रकार सज-धज कर राज भवन की ओर निकला। सयोग से उस समय युवती रानी अपने गवाक्ष मे खडी थी। ललित कुमार का ध्यान तो उधर नही गया था, किन्तु रानी ने इस देवोपम सौन्दर्यसम्पन्न युवक को देख लिया। प्रथम झलक मे ही वह उस पर रीझ गयी। उसने अपनी मान-मर्यादा का ध्यान रखना भी अनिवार्य नही समझा और दासी को भेजकर ललितकुमार को राजभवन मे बुलाया। जब रानी का सन्देश ललितकुमार को मिला तो उसका हृदय बाँसो उछलने लगा। उसे अपने पर गर्व अनुभव होने लगा। वह तुरन्त ही रानी के कक्ष मे पहुँच गया। रानी तो उद्विग्नतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा कर ही रही थी। दोनो को परस्पर दर्शन से बडी तृप्ति मिली। वे प्रेमालाप मे ऐसे खो गये कि इसका कोई कुपरिणाम भी हो सकता है—इसकी वे कल्पना

भी नही कर पाये । वे जब इस प्रकार आनन्द-जगत् मे विहार कर रहे थे, तभी दासी ने आकर सूचना दी कि महाराज पधार रहे हैं। दोनो का वह सुख-स्वप्न मानो हठात् ही टूट कर चूर-चूर हो गया । ललितकुमार भय से काँप उठा । उसके चहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी । गिड़गिड़ाकर वह रानी से प्रार्थना करने लगा कि मुझे कही छिपाओ, महाराज मुझे जीवित नही छोडेंगे । रानी के लिए भी सकट कुछ कम नही था । किन्तु वह करती तो क्या करती । सकट की घड़ी अप्रत्याशित रूप से ऐसी आ खडी हुई थी कि कुछ भी सोच-विचार का अवमर नही मिल पा रहा था । ललितकुमार को अब न तो कक्ष से बाहर भेजा जा मकता था, न कक्ष मे ऐसा कोई स्थान था जहाँ उसे आश्रय दिया जा सके । बडी विषम परिस्थिति थी । अचानक रानी को एक उपाय सूझा । राजभवन के पीछे शौचालय मे उसे छिपा दिया गया और उस पर ताला लगवा दिया । बिना सोचे-विचारे जो सुख के लोभ मे ग्रस्त हो जाता है, सकट की घडी मे उसे सब कुछ करने को तत्पर हो ही जाना पड़ता है । ललितकुमार को वही छिपना पडा । जयश्री ! उसकी बडी ही दुर्गति हुई । शौचालय की दुर्गन्ध से वह कष्टित होने लगा । भूख-प्यास से वह अधीर हो उठा । इधर रानी को इस बात का अवसर ही नही मिला कि उसे बाहर निकाल सके । ६ मास एव ८ दिवस तक उसे शौचालय मे रहना पड़ा । अन्त मे एक दिवस पानी के वेग से वह गिर गया । मेहतरानी सफाई करने पहुँची । उसने श्रेष्ठि-पुत्र को देखा तो आश्चर्य का पार न रहा । शीघ्र गति से दौडकर वह सेठ को सूचना

देने पहुँची । अपने प्यारे पुत्र को देखकर सेठ अत्यन्त प्रसन्न हुआ । स्नानादि करा के धीरे-धीरे उसे स्वस्थ किया गया । जब वह पूर्ण स्वस्थ हो गया तो पुन. राजभवन की ओर से निकला पर उसे बुलाने पर भी वह भवन मे नही गया क्योकि वह भली-भाँति वेदना का अनुभव कर चुका था ।

सुनो जयश्री ! तुम मेरा अभिप्राय स्पष्टरूपेण समझ चुकी होगी । यह जीवन भी माता के गर्भ मे सवानवमासपर्यन्त उसी स्थिति मे रहता है । दोनो तरफ मलमूत्र है । उलटा लटका रहता है । अत्यन्त वेदना का अनुभव करने के पश्चात् वह बाहर निकलता है । जम्बूकुमार आगे कहने लगे कि सांसारिक मोह-माया, सुख-लोलुपता और विषय वासनाएँ इसी प्रकार का अनर्थ करती है । वे अपना घातक स्वरूप लेकर मनुष्य की हानि करने नही जाती । वे तो मोह का रूप बनाकर बैठी रहती हैं । मनुष्य ही उनकी ओर लपकता है । दीपक की ओर आत्म-दाह के लिए पतंगा ही तो दौडता है । ललितकुमार भी यदि अपनी वासना को वश मे कर लेता, कामुकता के आधीन होकर राजभवन मे नही गया होता तो भला उसकी यह दशा हुई होती ! मैं तो भली-भाँति इन सासारिक सुखो की ऐसा विद्रूपता से परिचित हो गया हूँ । इसी कारण अब मैं ऐसी भूल नही कर सकता । यह निश्चय है कि वे सुख मुझे फँसाने के लिए मेरे पास तो आयेंगे नही, फिर मैं स्वेच्छा से उनके जाल मे क्यो फँस जाऊँ । मनुष्य जीवन पाया है, तो इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाने दो । इसका सदुपयोग हम इसी रूप मे कर सकते हैं जयश्री ! कि अनन्त सुख की प्राप्ति

के लिए प्रयत्न करें, मोक्ष के लिए साधना करे और दुखद भव-बन्धनो से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जायँ। यही सब कुछ भली-भाँति और सभी दृष्टियो से सोचकर मैंने निर्णय किया है—विरक्त हो जाने का। मुझे विश्वास है कि अब तुम्हारी धारणा मे मै एकागी सत्यवादी या दुराग्रही नही रहा। मेरा तो जयश्री! तुम्हारे लिए भी यही आग्रह है कि अनुरक्ति और विरक्ति दोनो पक्षों की लाभ-हानि का अध्ययन करो और यदि तुम्हे प्रतीत हो कि सुखो मे असारता के अतिरिक्त कुछ भी नही है, तो तुम भी उन्हे त्याज्य मान लो। इसी मे तुम्हारा कल्याण है।

अब तक जम्बूकुमार के इन विचारो से जयश्री का मन प्रभावित हो गया था। वह अपने विचारो मे मिथ्यात्व का अनुभव करने लगी थी और कुमार के विचारो मे सारहीनता के भाव की जो कल्पना उसने कर रखी थी—यह भी कुमार की वाणी के वेग मे प्रवाहित हो गयी। जयश्री ने जम्बूकुमार के दृष्टिकोण के साथ सहमति व्यक्त करते हुए उनके चरणो मे प्रणाम किया।

□

उपसंहार

वधुओं में वैराग्य-भावना

तीन प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, चतुर्थांश ही शेष रह गया था। नववधुओ ने अपनी-अपनी क्षमतानुसार जम्बूकुमार को गृहस्थाश्रम मे प्रवृत्त करने के प्रयत्न कर लिए थे। किसी के प्रयत्न को सफलता नही मिल पायी। इसके विपरीत पत्नियो पर जम्बूकुमार के मार्मिक आख्यानो का ही प्रभाव अधिक हुआ। उनका भाव था भी यही कि इन नववधुओ को आन्तरिक जागरण से युक्त कर दें। परिणामत अब तो वे सज्ञान होकर अब तक के अपने प्रयत्नो के कारण लज्जित भी होने लगी। जम्बूकुमार ने अनेक युक्तियो से अपनी पत्नियो को ससार की क्षणभगुरता, भोगों की असारता, माया की प्रवचना, सुखो की भयावहता आदि से ऐसा परिचित करा दिया कि उनके समक्ष ये सब अपने वास्तविक रूप मे उद्घाटित हो गये। उनका मन भोग की सकीर्ण वीथियो से निकल कर सयम के राजमार्ग पर आ जाने को प्रेरित होने लगा।

यह रात्रि हृदय-परिवर्तन की रात्रि थी। तस्कर प्रभव और उसके सहयोगियो का हृदय-परिवर्तन हो ही चुका था। अब बारी आठो वधुओ की थी। इनके मन में भी सद्य. अकुरित विरक्ति

तीव्रता के साथ विकसित होने लगी। अपने पति के मार्ग की उत्तमता को उन्होने परख लिया था। वे भी जम्बूकुमार का अनुगमन करने की अभिलाषा रखने लगी और उत्तरोत्तर यह अभिलाषा प्रबल होने लगी। उन्होंने अपके पतिदेव के समक्ष श्रद्धा सहित नमन करते हुए विनम्रता के साथ निवेदन किया कि आपकी महती कृपा से हमारी आत्माएँ भी जाग गयी है। अब हम यह भली भाँति जान गयी हैं कि सुखो की मृग-मरीचिका के प्रति आकर्षित होने मे कोई लाभ नही है। आप तो सासारिक सुखो एव विषयो को त्यागकर विरक्त हो ही रहे हैं, अब कृपा कर हमे भी इस मार्ग के पथिक हो जाने का आशीर्वाद प्रदान कीजिए। हम सब आपके अनुगमन के लिए उद्यत हैं और कर्मों का विनाश कर अजर-अमर सुख प्राप्त करने की अभिलाषा रखती हैं। अब तो आपकी अनुकम्पा से हमे तनिक बोध प्राप्त हुआ हैं, किन्तु आपको आपके सन्मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न हमने कम नही किया। हमे उसके लिए खेद है। हमारा वह अज्ञान-प्रेरित प्रयत्न था—उसके लिए हमे क्षमा कर दीजिए और हमारा भी उद्धार कीजिये। आपके सग ही हम सभी दीक्षा ग्रहण करना चाहती हैं—कृपया इस हेतु हमे भी अनुमति प्रदान कीजिए। आपने 'पाणिग्रहण' कर हमे लौकिक जीवन मे सरक्षण प्रदान किया है, अब आत्मोन्नति की साधना मे भी हमारा मार्ग-दर्शन कीजिए।

अपनी नव-विवाहिता पत्नियो के इन उद्‌गारो से जम्बूकुमार को हार्दिक प्रसन्नता हुई। इनकी कल्याण-कामना से प्रेरित होकर

उन्होंने अविलम्ब ही उन्हे दीक्षार्थ अपनी अनुमति प्रदान कर दी। वधुओ के हृदय-सरोज विकसित हो गये।

परिजनो को प्रतिबोध

यह नवजागरण की रात्रि विभिन्न पक्षो के लिए विभिन्न प्रकार का स्वरूप रखती थी। जम्बूकुमार के लिए यह रात्रि थी—विरक्ति का शुभ मुहूर्त। श्रेष्ठि-कन्याओ के लिए यह रात्रि थी—जम्बूकुमार को ससारोन्मुख करने के उद्यम की रात्रि और इसके परिणाम मे पासा ही पलट गया था। स्वय वधुओ के मन मे ही वैराग्योदय हो गया था। कन्याओ और जम्बूकुमार के माता-पिता के लिए यह निर्णायक रात्रि थी। इसी रात्रि मे जम्बूकुमार के भावी जीवन का रूप निर्धारित होने वाला था, जिस पर उन अभिभावको की आशा-निराशा आधारित थी। नौ ही श्रेष्ठिदम्पति मे अधीरता थी। वे शीघ्र ही वधुओ द्वारा किये गये प्रयत्नो का परिणाम जान लेने को उत्सुक थे। उषा-पूर्व ही वधुओ के माता-पिता ऋषभदत्त के प्रासाद पर एकत्रित हो गये। धारिणीदेवी और ऋषभदत्त तो कभी से उत्कण्ठित थे ही। सभी आतुरता के साथ जम्बूकुमार के निर्णय की प्रतीक्षा करने लगे।

प्रात.काल हो गया। नित्य की भाँति ही जम्बूकुमार अपने माता-पिता को प्रणाम करने पहुँचे। उन्होने देखा, तो चकित रह गये कि उनकी वधुओ के अभिभावक भी वहाँ विद्यमान थे। जम्बूकुमार को यह समझ लेने मे विलम्ब भी नही हुआ कि इन महानुभावो के इस समय आगमन का क्या प्रयोजन हो सकता है।

जम्बूकुमार ने झुककर अत्यन्त विनय के साथ सभी को नमन किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। अत्यन्त स्नेह के साथ श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने पुत्र को अपने समीप बिठाया और कोमलता के साथ बोले कि वत्स! हम सभी तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। हम समझते है कि हमारे भविष्य एव अन्य सभी विद्यमान परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए तुमने अपने भावी कार्यक्रम पर पुनर्विचार कर लिया होगा। साथ ही नववधुओ के साथ विचारो का आदान-प्रदान भी हुआ होगा। हम तुम्हारा निश्चय जानने के लिए अधीर हैं। हमे यह विश्वास भी है कि तुमने हमे बेसहारा छोड जाने का अपना विचार स्थगित कर दिया होगा। तुम ही तो हमारे सुखद भविष्य के अवलम्ब हो वत्स !!

पिता की जिज्ञासा को तुष्ट करते हुए जम्बूकुमार ने गम्भीरता के साथ कहा कि हे तात! गत रात्रि मैंने और आपकी कुल-वधुओ ने प्रचुर विचार-विमर्श किया। प्रारम्भ मे हममे मतभेद था। वधुएँ चाहती थी कि मैं गृहत्याग का विचार छोड़ दूं और भावी सुखो की कल्पना को पूर्ण करने के लिए वर्तमान सुखो की बलि न दूं। मेरा पक्ष तो स्पष्ट था ही। मैंने अविलम्ब साधु जीवन अगीकार कर लेने के सकल्प की चर्चा की। मैंने अपनी धारणा को भली-भाँति स्पष्ट करते हुए असार सुखो और विषयो की हानियो से उन्हे परिचित कराया और मानव जीवन के परम और चरम लक्ष्य की व्याख्या करते हुए उन्हे समझाया कि मानव-देह-धारण का प्रयोजन ही मोक्ष के रूप मे उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेना होता है। मैंने उस लक्ष्य की ओर अपनी दृढ उन्मुखता

के विषय मे चर्चा करते हुए वधुओ के समक्ष अपने निश्चय को दोहराया। प्रत्येक वधू ने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया और सभी के विचारो पर पर्याप्त मनोमथन हो चुका है। दीर्घ विचार विनिमय के पश्चात वधुएँ मुझमे सहमत हो गयी हैं। उन्हे मेरे विचारो और दृष्टिकोण मे औचित्य प्रतीत होने लगा है और मेरे भावी मार्ग के प्रति उनके मन मे अब कोई विरोध का भाव शेष नही रहा है।

जम्बूकुमार के इन शब्दो को सुनकर सब हक्के-बक्के रह गये। माता धारिणीदेवी के मन मे तो एक मथन ही मच गया। वधुएँ भला क्यो कर राजी हो गयी। नही, ऐसा नही हो सकता। जम्बूकुमार पर वे अपने प्रेम का प्रभाव जमाने मे असफल कैसे रह गईं। सोचते-साचते उसे तो चक्कर-सा आ गया। पिता ऋषभ-दत्त को आरम्भ मे तो अपने पुत्र के कथन पर विश्वास नही हो रहा था, किन्तु अन्तत उसे विश्वास करना ही पडा, जब पुत्र ने अत्यन्त तटस्थ एव निष्पृह भाव के साथ यह सूचना भी दी कि आठो कुलवधुएँ भी दीक्षा ग्रहण करने को आतुर है और मैंने तदर्थ उन्हे अपनी अनुमति दे दी है।

कक्ष मे पूर्ण रूप से सन्नाटा छाया हुआ था। वधुओ के माता-पिताओ के मन मे भी घोर निराशा जम कर बैठ गयी। वे कुछ भी नही कह पा रहे थे। तभी जम्बूकुमार पुन बोल उठे कि हम सबने अपने कल्याण का मार्ग अपनाया है और अनन्त सुख, मोक्ष हमारा लक्ष्य है। वे अपने श्वसुरजन को सम्बोधित कर बोले कि

आपकी कन्याएँ पूर्वजन्म के अति शुभ सस्कारो से सम्पन्न हैं। इसी कारण उनकी आत्माएँ शीघ्र जाग उठी है। सासारिक जीवन की विडम्बना से हम अब मुक्त हो जाना चाहते हैं। विरक्ति का हमारा आगामी चरण आप सबकी अनुमति की प्रतीक्षा कर रहा है। इसी प्रात.काल मे हम नौ ही प्राणी साधक-जीवन अंगीकार कर लेना चाहते है। आप हमारे हितैषी है और हमे आशा है कि आप सहर्ष हमे इस हेतु स्वीकृति प्रदान कर देंगे।

पूर्ण निस्तब्धता फिर से उस कक्ष मे जमने लगी। किसी को किसी दूसरे के मनोभावो को ताडने का भी अवकाश नही था। सभी अन्तर्मुखी होकर अपने-अपने विचारो मे ही खोये हुए थे। इस वातावरण की जम्बूकुमार पर अद्भुत प्रतिक्रिया हुई। उन्होने अनुभव किया कि अब भी पिता का मन मोह और अज्ञान से ग्रस्त है। वे हमारे इस निर्णय की महत्ता को स्वीकार नही कर पा रहे हैं। वे अपने पुत्र के भावी वियोग की असह्यता से आक्रान्त हैं। जब तक यह व्यामोह नही छूटेगा, वे दीक्षार्थ अनुमति देने मे असमर्थ रहेगे। क्षण-क्षण बीतता रहा, पिता का मोह सघन होता रहा और पुत्र का लक्ष्य दृढ होता रहा कि सर्वप्रथम माता-पिता को मोह-निद्रा से मुक्त किया जाय।

निदान जम्बूकुमार ने ही पुन कथन आरम्भ किया। उन्होने अपने अभिभावको को सम्बोधित किया और कहने लगे कि यह ससार तो समुद्र से समान है—विशाल और अतल गहरा। इसमे जीवन रूपी जल है जो अपार दु खो के लवण से खारा हो गया है। समुद्र के क्षारीय जल मे रचमात्र भी माधुर्य

की कल्पना नही की जा सकती—ठीक उसी प्रकार जीवन मे सुख की स्थिति रहती है। ससार के प्रत्येक प्राणी को घोर यातनाएँ और पीडाएँ, कष्ट और दु ख भोगने पडते है। हमारा मन ऐसी अवस्था मे आनन्द की कल्पना देने वाले मिथ्या सुखो की ओर आकर्षित होता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, किन्तु मृग मरीचिका जैसे तृप्ति सुलभ नही करती, वैसे ही ये तथाकथित सुख आनन्द नही दे पाते। दु खो का भोगते हुए और सुखो की ओर ललचाते हुए साधारण मनुष्य अपना जीवन व्यर्थ ही खो देता है। यहाँ तक कि जीवन-लीला की समापन वेला भी समीप आ जाती है और वह इस मूल्यवान जीवन के महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपक्रम भी नही कर पाता है। ऐसी अवस्था मे उसके लिए घोर प्रायाश्चित्त ही शेष बच जाता है। कितनी कारुणिक दशा ऐसे मनुष्य की होती है। और इसका मूल कारण यही होता है कि समय रहते वह सचेत नही होता। तात ! हम ६ ही जनो को यह सौभाग्य प्राप्त हो गया है कि हम यथासमय ही महान उद्यम मे प्रवृत्त हो पा रहे है। आप सभी के लिए यह विषय हर्ष का होना चाहिए, गौरव का होना चाहिए। अब हम लोगो के लिए जो तथाकथित सुख मिथ्या हो चुके हैं, असार हो चुके हैं—उनकी ओर हमे पुन. उन्मुख मत कीजिए। उनकी ओर आकर्षित होना हमारे लिए असम्भव है।

अज्ञानतावश मनुष्य उस मृगी की भाँति व्यवहार करता है जो कस्तूरी की मधुर सुगन्धि से मुग्ध होकर उसे घास मे खोजती फिरती है और असफल होकर निराश हो जाती है। अज्ञजन भी

इसी प्रकार सुखो की खोज वाह्य जगत मे करते रहते है, सन्तोष उन्हे मिल नही सकता है। असफलता की खिन्नता से ही वह घिरा रह जाता है। इसके विपरीत कुछ लोग यथासमय ही यह जान लेते है कि जैसे कस्तूरी स्वय मृगी की नाभि मे होती है उसी प्रकार सच्चा सुख तो आत्मा के भीतर खोजा जाना चाहिए। ऐसे जन वाह्य जगत मे सुखो के पीछे नही भागते, अपितु आत्मिक साधना मे लग जाते है। हम लोग भी उसी स्थिति मे है। तात ! वाह्य वासनाओ से हम विरक्त हो गये है अब आगे का चरण वढाने दीजिए। समस्त रागो से परे होकर हमे आत्म कल्याण के मार्ग पर आरूढ होने दीजिए। यात्रा चाहे कितनी ही कठिन हो— आपके आशीर्वाद उसे अवश्य ही सुगम बना देंगे। अब आप सभी से मेरी विनय है कि कृपा कर हमे दीक्षा-प्राप्ति के लिए अपनी अनुमति प्रदान कर दीजिए।

जम्बूकुमार की इन तात्त्विक युक्तियो से श्रेष्ठि-दम्पतियो के अन्त करण गहराई तक प्रभावित हो गये। जम्बूकुमार के कथन मे सारभूत सत्य का अनुभव उन्हे होने लगा उनके अन्तः नेत्र उन्मीलित होने लगे। चित्त मे चैतन्य उभरने लगा और उनके मन मे यह प्रेरणा उमड़ने लगी कि इन्हे हमारी ओर से अनुमति प्राप्त हो जानी चाहिए। ये अभिभावकगण सोचने लगे कि इन्हे अब सासारिक जीवन मे रखना सुगम भी नही है। फिर जो लक्ष्य इन्होने चुना है, वह महान है और सुसस्कारयुक्त मनुष्य ही इस ओर आकर्षित हो पाता है। हमारा तो यह परम सौभाग्य है कि ऐसी सन्तति के अभिभावक होने का गौरव हमे प्राप्त हुआ है।

गहन गम्भीर निस्तब्धता और निःशब्दता के बोझिल वातावरण को विदीर्ण करते हुए श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने अपने पुत्र से कहा कि जम्बूकुमार! तुम जैसे पुत्र को पाकर हम धन्य हो उठे हैं। यथार्थ मे तुम असाधारण आत्मा हो। तुमने हमे भी एक यथार्थ दृष्टिकोण दिया है। भगवान अर्हंत की महती कृपा ही है यह कि इस शुभ प्रभात मे तुम्हारे वचनो मे हमारी सुपुप्त आत्माएँ जाग उठी है। तुम्हारी माता का भी यही विचार है कि अब तक हम लोग जिस प्रकार की गतिविधियो मे लगे रहे, वे हेय है और श्रेय को हम हेय समझते रहे। वत्स! तुमने हमारे मन को ज्ञान-रश्मियो से आलोकित कर दिया है। इस आलोक मे हमे भी आत्मोत्थान का लक्ष्य ही दिखायी दे रहा है। अब तक मानव-जीवन के इस मूल्यवान अवसर का दुरुपयोग ही हम करते रहे हैं, किन्तु अब जीवन का प्रत्येक क्षण हम भी उसी चरम लक्ष्य की उपलब्धि के लिए लगा देंगे। तुम्हारे साथ हम भी दीक्षा ग्रहण करेंगे। आठो वधुओ के माता-पिता भी एक ही स्वर मे श्रेष्ठि ऋषभदत्त के इस विचार के महत्व को स्वीकार कर दीक्षा ग्रहण कर लेने की हार्दिक आकाक्षा व्यक्त करने लगे। सभी के मुख-मण्डल एक अद्भुत आभा से दमक उठे। उस आभा से मानो सारा कक्ष जगमगा उठा और वातावरण की बोझिलता तिरोहित हो गयी। अब सूर्योदय होने वाला था बाहर के अन्धकार के साथ-साथ श्रेष्ठि-दम्पतियो का भीतरी अन्धकार भी समाप्त हो गया।

प्रभव को क्षमादान

उसी समय प्रभव लौट आया। उसके साथ उसके दल के

पाँच सौ सदस्य भी थे । ये सब विरक्ति का भाव तो पहले ही धारण कर चुके थे। अब दीक्षा ग्रहण करने के पक्ष मे ये अपने-अपने अभिभावको की अनुमति लेकर आये थे । सूर्य के प्रकाश के साथ-साथ समस्त राजगृह मे यह आश्चर्यजनक समाचार भी सर्वत्र व्याप्त हो गया कि कल जिस जम्बूकुमार का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ था आज वह गृहत्याग कर साधक जीवन प्रारम्भ कर रहा है। यही नही उसके ज्ञानपूर्ण वचनो से प्रभावित होकर उसके माता-पिता श्रेष्ठि ऋषभदत्त और धारिणी देवी, उसकी आठो नव-विवाहिता पत्नियाँ और पत्नियों के माता-पिता भी जम्बूकुमार के साथ ही दीक्षित हो रहे हैं। यह घटना भी छिपी नही रही कि गतरात्रि तस्कर प्रभव अपने दल सहित श्रेष्ठि ऋषभदत्त के यहाँ चोरी करने के लिए गया था । चोरी तो वह नही कर पाया, उलटा जम्बूकुमार की वाणी से प्रभव और उसके पाँच सौ साथियो का हृदय-परिवर्तन हो गया। अब वे सभी आज ही जम्बूकुमार के साथ दीक्षा ग्रहण कर रहे है । जो भी इन समाचारो को सुनता अवाक् सा रह जाता था। सब के मन जम्बूकुमार के असाधारण व्यक्तित्व की प्रशसा के भाव से भर उठे । उनको यह सब एक चमत्कार सा प्रतीत हो रहा था । इस प्रात. सारे नगर मे चर्चा का विषय ही बस यही एक था। सब नागरिकजन गहन विस्मय मे निमग्न हो रहे थे।

यह समाचार मगधनरेश कूणिक के पास भी पहुँचा । वह भी जम्बूकुमार के इस अद्भुत प्रभाव से चमत्कृत हो गया। उसे जब यह ज्ञात हुआ कि जम्बूकुमार का अभिनिष्क्रमण महोत्सव आज

ही आयोजित किया जा रहा है तो उसके मन मे भी इस महोत्सव मे सम्मिलित होने की इच्छा उठी। जम्बूकुमार जैसे सज्ञान और प्रभावपूर्ण महात्मा के कारण मगध गणराज्य को जो गरिमा प्राप्त हुई थी, उसके कारण राजा कूणिक के मन मे जम्बूकुमार के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ।

मगधाधिपति श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने निवास पर जब पहुँचे तो प्रभव अपने साथियो सहित जम्बूकुमार के समक्ष खड़ा था। नृपति ने दिव्यात्मा जम्बूकुमार को प्रणाम किया और हृदयस्थ श्रद्धाभाव को प्रकट किया। जम्बूकुमार का दर्शन कर उन्हे बडी प्रसन्नता हुई। उन्होने जम्बूकुमार को सम्बोधित कर कहा कि तुम्हारे त्याग एव सयम से हम बडे प्रभावित हुए है। भरे यौवन मे तुमने कामनाओ, आकाक्षाओ, सासारिक विषयों को ठुकरा कर वैराग्य व्रत धारण किया है—वह असाधारण कृत्य है। जम्बूकुमार तुमसे न केवल आत्म-कल्याण, अपितु, पर-कल्याण भी सधेगा। धन्य है तुम जैसे प्राणी! तुम्हे जन्म देकर मगध की धरती भी धन्य हो गयी है। तुमने यह सिद्ध कर दिया है कि मान-सम्मान, प्रतिष्ठा, धन-वैभव, अधिकार आदि किसी का भी बाधकरूप तपस्या के मार्ग मे प्रतिकूल प्रभाव नही डाल सकता—यदि मनुष्य सयम की शक्ति अपने वश मे करले। हम तो मगधेश्वर होकर भी तुम्हारे सामने अतिक्षुद्र हो गये हैं। यदि हम तुम्हारी कोई सेवा कर सकें, तो ऐसा करके कृतकृत्य हो जायेंगे। मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो कहो।

पूर्ण तटस्थ भाव से ही जम्बूकुमार मगधनरेश के सारे कथन

को सुनते रहे। विरक्त हृदय की यह विशेषता होती है कि प्रशसा से न वे प्रसन्न होते हैं और न ही निद्रा से क्रोधित होते है। प्रभव का प्रश्न अभी उनके समक्ष था ही। अत्यन्त विनय के साथ उन्होने कहा कि राजन्! जागतिक सम्बन्धो का परिहार कर चुकने पर कोई अभिलाषा वीतरागी मन मे नही रहती। मैं आपसे अपने लिए तो कुछ निवेदन कर ही नही सकता, कोई आवश्यकता भी प्रतीत नही होती। किन्तु यह युवक जो सामने खड़ा है, इसका नाम प्रभव है। राजकीय नियमानुसार यह दण्ड का भागी है। चौर्य कर्म मे आजीवन रत रहने वाले इस युवक ने कैसे-कैसे अपराध किये होगे—इसकी कल्पना भी कठिन है। गतरात्रि यह इस भवन मे भी चोरी करने को ही आया था, किन्तु यहाँ आने पर मेरे साथ इसका जो वार्तालाप हुआ—उससे इसकी सोई हुई आत्मा जाग उठी है। इसे अपार आत्म-ग्लानि हुई और इसका हृदय-परिवर्तन हो गया है। इसने अपने पाप कर्मों को ही नही त्याग दिया, अपितु यह सासारिक माया-मोह से भी विरक्त हो गया है। इसने साधक जीवन अपनाने की आकाक्षा व्यक्त की है। इसके साथ खडे ये ५०० लोग इसके दल के ही सदस्य थे। ये सब के सब दीक्षा ग्रहण करने के अभिलाषी हैं। इनकी यह कामना तभी पूर्ण हो सकती है, जब कि राज्य की ओर से इन्हे दण्डमुक्त घोषित किया जाय। राजन्! मैं इनके लिए आपसे याचना करता हूँ कि कृपया प्रभव और उसके साथियो को क्षमा प्रदान करें। यह इनके जीवन मे एक महत्वपूर्ण अवसर है, इसका लाभ ये आपके क्षमादान से ही उठा सकते है।

मगधनरेश ने तुरन्त ही घोषित कर दिया कि लोभवश प्रभव ने जितने अपराध किये हैं वे उसकी अज्ञानता के कारण हुए है। हम उसे और उसके सभी साथियो को क्षमादान देते है। अव ये श्रमण धर्म अगीकार करें और जीवन को सुमार्ग पर अग्रसर करे।

अभिनिष्क्रमण दीक्षा-ग्रहण

यह प्रात काल नगर भर मे एक अद्भुत स्वर्णिम आलोक प्रसारित कर रहा था। आज सूर्य एक नवीन सन्देश लेकर नभो-मण्डल मे चढने लगा था। राजगृह मे आज जम्बूकुमार अन्य ५२७ व्यक्तियो के साथ दीक्षा ग्रहण कर रहे थे। नगर भर मे एक अद्भुत और मागल्यपूर्ण वातावरण था। जम्बूकुमार के अभिनिष्क्रमण का उत्सव आयोजित होने लगा। पिता श्रेष्ठि ऋषभदत्त एव माता धारिणीदेवी ने जम्बूकुमार की कोमल देह पर सुगन्धित उबटनो का लेप किया और उन्हे स्नान कराया। उन्हे आज पुन. मूल्यवान एव सुन्दर वस्त्रो तथा अलकारो से विभूषित किया गया। जम्बूद्वीप के अधिष्ठाता अनाधृत देव भी अभिनिष्क्रमणोत्सव मे सम्मिलित हुए और जम्बूकुमार को उन्होने आशीर्वाद प्रदान किया। धर्म की प्रेरणा से अद्भुत शान्ति सर्वत्र व्याप्त थी। मगल-वाद्यो से सारा आकाश ही जैसे गूंज उठा था। मागलिक मन्त्रोच्चार के साथ जम्बूकुमार अपने माता-पिता सहित विशिष्ट रूप से सजी हुई शिविका मे आरूढ़ हुए। एक हजार पुरुष इस शिविका को वहन कर रहे थे। श्रेष्ठि ऋषभदत्त के भवन से अभिनिष्क्रमण यात्रा के आरम्भ होते ही नगारे आदि वेग से वज उठे।

जम्बूकुमार एव अन्य दीक्षार्थियो के दर्शन करने की आतुरता लिए लाखो नर-नारी राजगृह के मार्गो पर प्रतीक्षा कर रहे थे। इन दीक्षार्थियो की शोभा निहारकर वे धन्य हो उठते और इस शोभा-यात्रा मे सम्मिलित होते जा रहे थे। अभिनिष्क्रमण की इस शोभा यात्रा का आकार इस प्रकार उत्तरोत्तर बढता चला जा रहा था। मगल-गीतो की गूँज से सारा परिवेश पवित्र हो उठा था। बडा ही भव्य दृश्य निर्मित हो गया था।

इस विराट दीक्षा समारोह के अवलोकनार्थ समारोह स्थल पर चारो ओर से धर्म-प्रेमियो की विशाल जन समुदाय एकत्रित होने लगा। अभिनिष्क्रमण शोभा यात्रा भी समारोह स्थल पर पहुँची और अन्य ५२७ दीक्षार्थियो के साथ जम्बूकुमार आर्य सुधर्मा स्वामी की सेवा मे उपस्थित हो गये। आर्यश्री के चरणो मे नत-मस्तक होकर जम्बूकुमार ने भाव-विभोर अवस्था मे विनय सहित निवेदन किया कि हे प्रभो! आप मेरा, मेरे स्वजनो और अन्य कल्याणार्थियो का उद्धार कीजिए। हम सब साधना-पथ के यात्री होने की उत्कट कामना के साथ आपके चरणो मे उपस्थित हुए हैं। कृपया हमे दीक्षा प्रदान कर आशीर्वाद दीजिए कि यह नवीन मंगलमय यात्रा हम अबाध रूप से सम्पन्न करें और हमे चिर-सुख का, मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त हो। हमे महाव्रत धारण कराइए, प्रभो!

आर्य सुधर्मा स्वामी ने सभी दीक्षार्थियो को दीक्षानुमति प्रदान की। दीक्षा पूर्व की अपेक्षित धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न होने लगी। अन्त मे आर्यश्री ने सभी को भागवती दीक्षा प्रदान कर

दी । इसके अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी ने धारिणीदेवी, जम्बूकुमार की आठो पत्नियो तथा उनकी माताओ को आर्या सुव्रता की आज्ञानुवर्तिनी बनाया । इन्हे आर्यश्री ने आदेश दिया कि आर्या सुव्रता के शुभ निर्देशन मे वे साध्वी जीवन का निर्वाह करते हुए आत्मोत्थान मे लगी रहे । इसी प्रकार प्रभव एव उसके साथियो को जम्बू मुनि के सरक्षण मे रख दिया गया और उन्हे शिष्यवत् व्यवहार करने का आदेश दिया गया ।

दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् आर्य सुधर्मा स्वामी ने नवदीक्षित श्रमण-श्रमणियो को उद्‌बोधन प्रदान किया । आर्यश्री ने कहा कि आयुष्मानो ! तुम सभी ने जागतिक विषय, कषायादि के बन्धनो से स्वय को मुक्त कर लिया है और श्रमणधर्म मे दीक्षित होकर त्याग, साधनाप्रियता और सयम का परिचय दिया है । तुम्हारा यह आचरण अत्यन्त प्रशसनीय है । अब अपेक्षित यह है कि पूर्व साधु-आदर्शो का पालन करते हुए अपने साधक जीवन को भी ऐसा आदर्श रूप दो कि जिसके अनुसरण से भावी पीढियो का कल्याण सम्भव हो । भव बन्धनो को चुनौती देकर एक सघर्ष तो तुमने जीत लिया है, किन्तु आगामी सघर्ष भी बडा महत्वपूर्ण है । आने वाली चुनौतियो को सयम की शक्ति से पराभूत करना होगा । उत्तरोत्तर आत्मिक उत्थान मे व्यस्त रहकर अचल धैर्य को अपना आश्रय मानना है, सफलता तुमको अवश्य प्राप्त होगी ।

तुमने जिस भव्य त्याग-भावना का परिचय दिया है वह युग-युगो तक श्रमण परम्परा को प्रेरणा देती रहेगी । इस अवसर

पर मैं कतिपय महत्वपूर्ण परामर्श देना चाहता हूँ। अनेक जन दीक्षा व्रत लेकर सिंह के समान श्रमण परम्परा को अंगीकार करते है, किन्तु तत्पश्चात् शृगालवत् कायरता का परिचय देने लगते हैं। ऐसे श्रमण सयम की वाह्य औपचारिकताओ का ही निर्वाह कर पाते है। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी होते है जो शृगाल के समान कायरता दिखाकर, भयभीत होकर जगत का परिहार करके सयम मार्ग पर आरूढ हो जाते है और शेष जीवन मे भी शृगालवत ही वे सयम का निर्वाह करते रहते है। कतिपय जन ऐसे भी होते हैं, जो सयम ग्रहण के समय तो शृगालवत होते हैं, किन्तु तदनन्तर सिह की भाँति उसका निर्वाह करते है। और इन सबसे भिन्न ऐसे पराक्रमी महापुरुष भी होते हैं, जो सिंह की भाँति ही पूर्ण उत्साह से साथ साधना-पथ पर चढते हैं और निरन्तर उसी साहस और वीरता के साथ, सिंह के समान ही अग्रसर होते चले जाते है। यह अन्तिम आदर्श ही तुम सबके लिए अनुकरणीय है। तुमको ऐसे ही साधको की भाँति साधना के दीप को प्रज्वलित रखना है, उसकी शिखा को निष्कम्प रखना है। यदि ऐसे ही उत्साह और धैर्य के साथ साधनारत रहने मे सफल हो सके, तो तुम्हारे लिए दुर्लभ परमपद भी सुलभ हो जायगा। मेरी कामना है कि दिन-प्रतिदिन तुम अपनी साधना मे प्रगति करते चलो। यह क्रम निर्विघ्न चलता रहे और उत्थान के नवीन आयाम जुडते चले जायँ।

जम्बूकुमार और समस्त सद्य दीक्षित जन श्रद्धेय गुरुवर आर्य सुधर्मा स्वामी के शुभाशीर्वाद से कृतकृत्य हो उठे। आर्यश्री के

प्रवचन से प्रेरित होकर और उनके उपदेशो को हृदयगम कर सभी ज्ञानार्जन एव तपश्चर्या के मार्ग पर पूर्ण धैर्य एव साहस के साथ चरण वढाने लगे।

दीक्षोपरान्त उपलब्धियाँ

जम्बूकुमार से जम्बू मुनि होकर वे अत्यन्त धीर-गम्भीर रूप मे आत्म-कल्याण के पवित्र पथ पर अग्रसर होते रहे। सयम और साधना उनके पाथेय थे। सच ही है, जव मनुष्य की आत्मा पर से अज्ञानावरण हट जाता है, तव उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है और आत्मा उत्थान के नव-नवीन आयामो के अनुसन्धान मे सतत रूप से व्यस्त रहती है। जम्बू मुनि अहर्निश आचार्य सुधर्मा स्वामी की सेवा मे लगे रहते और उनके विद्वत्तापूर्ण मार्ग-दर्शन मे ज्ञानार्जन करते रहे। साधना के क्रम मे भी उन्होंने असाधारण प्रगति की। द्वादशागी का सम्पूर्णत अध्ययन उन्होने अल्पावधि मे ही सम्पन्न कर लिया और उसके सूक्ष्माशो को भी उन्होने गम्भीरता के साथ हृदयगम कर लिया था।

दीक्षा के पूर्व १६ वर्ष जम्बूकुमार ने गृहस्थ जीवन मे व्यतीत किये थे और दीक्षोपरान्त २० वर्ष की सुदीर्घ अवधि उन्होने अथक गुरु-सेवा, गम्भीर अध्ययन-मनन एव साधना मे प्रयुक्त की। वीर निर्वाण सवत् २० की समाप्ति का समय था, जव आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने निर्वाण की वेला मे जम्बू मुनि को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। आर्यश्री ने उनको भगवान महावीर स्वामी के द्वितीय पट्टधर के रूप मे नियुक्त किया। आचार्य पद की प्राप्ति के पश्चात वे आर्य जम्बू स्वामी हो गये।

साधना की परम उपलब्धि के रूप मे उन्हे 'केवलज्ञान' की प्राप्ति हुई। केवली जम्बूस्वामी ने ४४ वर्षों तक धर्म की खूब सेवा की। भगवान महावीर स्वामी के उपदेशो-शिक्षाओ का प्रचार-प्रसार करते हुए आर्य जम्बूस्वामी लाखो-करोड़ो नर-नारियो को आत्म-कल्याण की यात्रा के लिए प्रेरणा देते रहे। भगवान महावीर स्वामी के द्वितीय पट्टधर के रूप मे उन्होने स्वय को अत्यन्त प्रतिभा, अनन्त ज्ञान और गहन दर्शन का स्वामी सिद्ध किया। वे आर्य सुधर्मा के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। उनके श्रम और प्रभाव से श्रमण-परम्परा को जो शक्ति प्राप्त हुई—वह ऐतिहासिक महत्व की वस्तु है। इस परम्परा के विकास को जम्बू स्वामी द्वारा अद्‌भुत गति मिली थी।

वीर निर्वाण सवत् ६४ (तदनुसार ईसा पूर्व ४६३) मे आर्य जम्बूस्वामी ने निर्वाण पद प्राप्त किया। इस समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी। निर्वाण के समय आर्य जम्बूस्वामी ने प्रभव मुनि को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और श्रमण-शासन की बागडोर उन्हे सौप दी। जम्बूस्वामी के जीवन काल मे आर्य भूमि साधना की ज्योति से जगमगाती रही और उनकी उत्कृष्ट साधना भविष्य के साधको को भी प्रेरणा देती रही।

परिशिष्ट

□ जीवन रेखा

नाम	:	जम्बूकुमार
जन्म	:	वीर निर्वाण से १६ वर्ष पूर्व
जन्मस्थली	:	राजगृह
माता	:	धारिणी
पिता	:	श्रेष्ठी ऋषभदत्त

धर्मपत्नियाँ	माता	पिता
१. समुद्रश्री	पद्मावती	समुद्रप्रिय
२. पद्मश्री	कमलमाला	समुद्रदत्त
३ पद्मसेना	विजयश्री	सागरदत्त
४ कनकसेना	जयश्री	कुवेरदत्त
५. नभसेना	कमलावती	कुवेरसेन
६ कनकश्री	सुषेणा	श्रमणदत्त
७ कनकवती	वीरमती	वसुषेण
८. जयश्री	जयसेना	वसुपालित

दीक्षा—वीर निर्वाण सवत् १ मे आर्य सुधर्मा द्वारा

आचार्य पद—ईसा से ५०७ वर्ष पूर्व वीर निर्वाण
सवत् २० मे ।

सम्पूर्ण आयु—८० वर्ष

गृहस्थ पर्याय—१६ वर्ष

साधु पर्याय—६४ वर्ष (४४ वर्ष तक आचार्य रहे)

केवल ज्ञान की प्राप्ति—वीर निर्वाण सवत् २० मे ।

निर्वाण—ईसा पूर्व ४६३ मे आर्य जम्बू ने ८० वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर नि० स० ६४ मे निर्वाण पद प्राप्त किया ।

□

आचार्य प्रभव

आचार्य प्रभव जयपुर राज्य के कात्यायन गोत्रीय क्षत्रिय राजा विन्ध्य के वडे पुत्र थे। इनके लघु भाई का नाम सुप्रभ था। ईसा पूर्व ५५७ मे जन्मा राजकुमार प्रभव पिता द्वारा अपने छोटे भाई सुप्रभ को राज्य भार सौंपने के कारण रुष्ट हो जगलो मे रहने लगा।

कुछ ही समय मे साहसी राजकुमार प्रभव विन्ध्या ग्वी मे रहने वाले दस्युओ के साथ घुलमिलकर उन सबके नेता वन गये और अपने ५०० साथियो को लेकर प्रभव जहाँ-तहाँ चौर्य कर्म करने लगे। तालोद्घाटिनी, अवस्वापिनी आदि अनेक विद्याओ के ज्ञाता होने के कारण कोई भी उनको पकडने मे सफल न हो सका।

राजगृह नगर के वैभव सम्पन्न ऋषभदत्त सेठ के घर पर जब प्रभव अपने साथियो के साथ चोरी हेतु उपस्थित हुआ तभी उसके समस्त साथियो के पैर जम्बू के भवन मे स्थिर हो गये। प्रभव हतप्रभ हो समस्या के समाधान हेतु जम्बूकुमार के निकट उपस्थित हुआ। जम्बू की वैराग्यपरक वाणी ने उसके दिल के पापमय विचार वदल दिये और प्रभव अपने ५०० साथियो के सह जम्बू-कुमार सहित आर्य सुधर्मा के चरणो मे दीक्षित हो गये।

जम्बूस्वामी के पश्चात् भगवान महावीर के तृतीय पट्टधर का गौरवपूर्ण पद आचार्य प्रभव को प्राप्त हुआ। ३० वर्ष तक गृहस्थ पर्याय मे और ७५ वर्ष तक श्रमण पर्याय मे कुल १०५ वर्ष की आयुष्य पूर्ण कर आचार्य प्रभव स्वर्ग पधारे। □

जैनागमों मे आर्य जम्बू

साधु धर्म स्वीकार करने के पश्चात् आर्य जम्बू अपने गुरुदेव आर्य सुधर्मा की सेवा मे रहकर शास्त्राध्ययन करने लगे जिस तरह गौतम गणधर ने प्रभु महावीर से प्रश्नादि किये उसी तरह आर्य जम्बू भी सुधर्मास्वामी से समाधान प्राप्त करते हैं। आर्य सुधर्मा भी अपने सुयोग्य शिष्य जम्बू की सभी शकाओ का समाधान करते है।

गुरु द्वारा अपने शिष्य को आगमो का ज्ञान देने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से आगे से आगे पश्चात्वर्ती काल मे भी चलती रही। जैनागमो को आज तक यथावत् रूप मे बनाये रखने का सारा श्रेय आगम ज्ञान के आदान प्रदान की इस परम्परा को ही है।

जैनागमो की उपलब्धि मे गणधर गौतम की तरह आर्य जम्बू स्वामी की भी महत्त्वपूर्ण देन है, जिसे कभी भुलाया नही जा सकता।

आज उपलब्ध आगमो का जो स्वरूप है वह उस समय की मूल परम्परा को समझने का आधार है। यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर की वाणी को अर्थ रूप से सुनकर आर्य सुधर्मा ने जिस प्रकार शब्द रूप से ग्रथित किया और जिस रूप मे जम्बूस्वामी ने पृच्छाकर आगम ज्ञान को प्राप्त किया उसी अपरिवर्तित स्वरूप मे आज वह ज्ञान भी विद्यमान है।

आगमों में आर्य जम्बू के पूछने का प्रकार—

जइ ण भन्ते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण दसमस्म अगस्स पण्हावागरणाण अयमट्ठे पण्णत्ते एक्कारसमस्स ण भन्ते ! अगस्स विवागसुयस्स समणेण जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ?

—हे भगवन् ! प्रश्नव्याकरण नामक दशम अग के अनन्तर मोक्ष संम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने विपाक सूत्र नामक एकादशवे अग का क्या अर्थ फरयाया है ?

आर्य सुधर्मास्वामी का उत्तर प्रदान करने का प्रकार—

तते ण अज्ज सुहम्मे अणगारे जम्बू अणगार एव वयासी—एवखलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण एक्कारसमस्म अगस्स विवाग-सुयस्स दो सुयखधा पण्णत्ता ।

—तदनन्तर आर्य सुधर्मा अनगार ने जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा—हे जम्बू ! मोक्ष सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने विपाकसूत्र नामक एकादशवें अग के दो श्रुतस्कन्ध प्रतिपादन किये है । [विपाक सूत्र]

जैनागमो मे आर्य जबू से सम्बन्धित जो आगम हैं, उन आगमो का मक्षिप्त परिचय इस प्रकार जानना चाहिए ।

☐ ज्ञाताधर्मकथा

द्वादशागी मे ज्ञाताधर्मकथा का छठवाँ स्थान है । इसके दो श्रुतस्कन्ध है । प्रथम श्रुतस्कन्ध मे १६ अध्ययन है और दूसरे श्रुतस्कन्ध मे १० वर्ग है ।

प्रथम श्रुतस्कन्ध में जिन १६ अध्ययनो का वर्णन है, वह इस प्रकार—१. मेघकुमार, २. धन्ना सार्थवाह, ३. मयूर के अण्डो का, ४. दो कछुओ का, ५. थावच्चापुत्र, ६. तुम्बे के उदाहरण का, ७ धन्ना सार्थवाह की चार पुत्रवधुओ का, ८. तीर्थंकर मल्ली भगवती का, ६. माकदीपुत्र जिनपाल और जिनरक्षित का, १०. चन्द्र के उदाहरण का, ११. समुद्र के किनारे होने वाले दावद्रव के वृक्ष का, १२ कलुषित जल को शुद्ध बनाने की पद्धति का, १३. दर्दुर का उदाहरण, १४. तेतलीपुत्र का वर्णन, १५. नन्दीफल का उदाहरण, १६. पाण्डव पत्नी द्रौपदी का अपहरण, १७. समुद्री अश्वो का, १८. सुसुमा का वर्णन जो धन्ना सार्थवाह की पुत्री थी, ११. पुण्डरीक और कुण्डरीक का वर्णन।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे—१. चमरेन्द्र, २. बलीन्द्र, ३. धरणेन्द्र, ४. पिशाचेन्द्र, ५. महाकालेन्द्र, ६. शकेन्द्र, ७. ईशानेन्द्र।

☐ उपासकदशांग

प्रस्तुत आगम द्वादशागी का सातवाँ अग है। इसमे १० उपासको की (श्रावको की) कथाएँ हैं जिनके नाम निम्नलिखित है—

१ आनन्द, २ कामदेव, ३. चूलणीपिता, ४. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. कुण्डकोलिक, ७. सकडालपुत्र, ८ महाशतक, ६. नदिनीपिता, १० सालतियापिया-सालेपिकापिता।

☐ अन्तकृत्दशा सूत्र

प्रस्तुत आगम द्वादशागी आठवाँ अग है। इसके आठ वर्गों मे ६० साधको का वर्णन किया गया है जिसका नामोल्लेख इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग के १० अध्ययन—१ गौतमकुमार, २ समुद्र-कुमार, ३ सागरकुमार, ४. गम्भीरकुमार, ५ स्तिमितकुमार, ६. अचलकुमार, ७. कम्पिलकुमार, ८. अक्षोभकुमार, ९. प्रसेन-जितकुमार, १०. विष्णुकुमार।

द्वितीय वर्ग मे ८ अध्ययन—१. अक्षोभ, २ सागर, ३ समुद्र ४. हिमवान ५. अचल ६ धरण ७ पूरण ८ अभिचन्द ॥

तृतीय वर्ग के १३ अध्ययन—१. अणियसेन, २ अनन्तसेन, ३. अजितसेन, ४ अनिहतरिपू, ५ देवसेन, ६ शत्रुसेन, ७. सारण, ८ गज, ९ सुमुख, १०. दुर्मुख, ११ कूपक, १२ दारुक, १३ अनादृष्टि।

चतुर्थ वर्ग के १० अध्ययन—१ जालि, २ मयालि, ३ उवयालि, ४ पुरुषसेन, ५ वारिसेन, ६. प्रद्युम्न, ७ शाम्ब, ८. अनिरुद्ध, ९ सत्यनेमि, १० दृढनेमि।

पाँचवे वर्ग के १० अध्ययन—१ पद्मावती, २. गौरी, ३ गान्धारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुसीमा, ६ जाम्बवती, ७. सत्यभामा, ८. रुक्मिणी, ९ मूलश्री, १० मूलदत्ता।

छठे वर्ग के १० अध्ययन—१. मङ्काई, २ किङ्कम, ३. मुद्-गरपाणि, ४ काश्यप, ५ क्षेमक, ६ धृतिधर, ७. कैलाश, ८. हरिचन्दन, ९. वारत, १०. सुदर्शन, ११ पूर्णभद्र १२. सुमनोभद्र, १३ सुप्रतिष्ठ, १४ मेघ, १५ अतिमुक्त, १६ अलक्ष्य।

सातवे वर्ग के १३ अध्ययन—१ नन्दा, २. नन्दवती, ३. नन्दोतरा, ४ नन्दश्रेणिका, ५ मरुता, ६. महामरुता ७. मरुदेवा, ८. भद्रा, ९. सुभद्रा, १० सुजाता, ११. सुमनातिका १२. भूतदत्ता ।

आठवे वर्ग के १० अध्ययन हैं—१. काली, २. सुकाली, ३. महाकाली, ४. कृष्णा, ५ सुकृष्णा, ६ महाकृष्णा, ७. वीरकृष्णा, ८ रामकृष्णा, ९ पितृसेनकृष्णा, १० महासेन कृष्णा ।

☐ अनुत्तरोपपातिक दशा

प्रस्तुत आगम द्वाद्वशागी का नवाँ अग है । इसके तीन वर्गो मे ३३ साधको का वर्णन है ।

प्रथम वर्ग के १० साधको के नाम—१. जालि, २ मयालि, ३. उपजालि, ४ पुरुषसेन, ५ वारिसेन, ६ दीर्घदन्त, ७ लष्टदन्त, ८ विहल्ल, ९ वेहायस, १० अभयकुमार ।

दूसरे वर्ग के १३ अध्ययन के नाम— १. दीर्घसेन, २. महासेन, ३. लष्टदन्त, ४. गूढदन्त, ५ शुद्धदन्त, ६ हल्ल, ७. द्रुम, ८. द्रुमसेन ९ महाद्रुमसेन, १० सिंह, ११ सिंहसेन, १२ महासिंहसेन १३. पुष्पसेन ।

तृतीय वर्ग के १० अध्ययन—१ धन्यकुमार, २ सुनक्षत्रकुमार, ३. ऋषिदास, ४ पेल्लक, ५ रामपुत्र, ६. चन्द्रिक, ७ पृष्टिमात्रिक, ८. पेढालपुत्र, ९ पोट्टिल, १०. वेहल्ल ।

☐ प्रश्नव्याकरणसूत्र

प्रस्तुत आगम द्वादशागी का दसवाँ अग है। प्रस्तुत आगम मे आस्रव और सवर का सविस्तार वर्णन है।

☐ विपाकसूत्र

प्रस्तुत सूत्र द्वादशागी का ग्यारहवाँ अंग है। इसके दो श्रुत स्कन्ध हैं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध मे १० अध्ययन—१ मृगापुत्र, २ उज्झित-कुमार, ३ अभग्नसेन, ४ शकट, ५ बृहस्पतिदत्त, ६ नन्दीवर्धन, ७ उम्बरदत्त, ८ शौर्यदत्त, ९ देवदत्ता, १०. अजुश्री।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे १० अध्ययन—१ सुबाहू, २ भद्रनन्दी, ३ सुजात, ४ सुवासवकुमार, ५ जिनदास, ६ धनपति, ७. महाबल, ८ भद्रनन्दी, ९. महाचन्द्रकुमार, १०. वरदत्तकुमार।

☐ निरयावलिया आदि पाँच सूत्र

[कप्पिया, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचुलिया, वण्हिदशा]

निरियावलिया श्रुतस्कन्ध मे पाँच उपाग समाविष्ट हैं—१ कल्पिका, २ कल्पवतसिका, ३ पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका, ५ वृष्णिदशा।

कप्पिया निरियावलिया के प्रथम वर्ग के १० अध्ययन—१ काल, २. सुकाल, ३. महाकाल, ४ कण्ह, ५ सुकण्ह, ६. महाण्कह, ७ वीरकण्ह, ८. रामकण्ह, ९ पिउसेनकण्ह, ० महासेनकण्ह।

कप्पवडसिया के १० अध्ययन—१. पउम, २ महापउम, ३. भद्द, ४. सुभद्द, ५. पउमभद्द, ६. पउमसेन, ७ पउमगुल्म, ८ नलिनीगुल्म, ९. आणन्द, १०. नन्दन ।

पुष्पिका के १० अध्ययन—१ चन्द्र, २ सूर्य, ३. शुक्र, ४. बहुपुत्रिक, ५ पूर्णभद्र, ६. मणिभद्र, ७ दत्त, ८ शिव, ९ वलेपक, १० अनादृत ।

पुष्पचूला के १० अध्ययन—१. श्रीदेवी, २ ह्रीदेवी, ३. धृतिदेवी, ४ कीर्तिदेवी, ५. बुद्धिदेवी, ६. लक्ष्मीदेवी, ७. इलादेवी, ८ सुरादेवी, ९. रसदेवी, १० गन्धदेवी ।

वृष्णिदशा के १२ अध्ययन—१. निषधकुमार, २. मायनीकुमार, ३. वहकुमार, ४ वेधकुमार, ५ प्रगतिकुमार, ६ ज्योतिकुमार, ७. दशरथकुमार, ८. दृढरथकुमार, ९ महाधनुकुमार, १० सप्त-धनुकुमार, ११. दशधनुकुमार, १२ शतधनुकुमार ।

नन्दीसूत्र की स्थविरावली मे आर्य जम्बूस्वामी का भगवान महावीर स्वामी के द्वितीय पट्टधर के रूप मे उल्लेख है ।

दिगम्बर जैन-साहित्य में जम्बू

यद्यपि आर्य जम्बू को श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनो ही परम्पराओ मे अन्तिम केवली माना गया है तथापि कुछ विपयो मे दोनो परम्पराओ मे मतभेद है—जैसे श्वेताम्बर साहित्य मे जम्बूकुमार के पिता का नाम ऋषभदत्त व माता का नाम धारिणी है जबकि दिगम्बर परम्परा मे पिता का नाम अर्हद्दास व माता का नाम जिनमती बताया है।

श्वेताम्बर मान्यतानुसार ८ कन्याओ के साथ जम्बूकुमार का विवाह हुआ जबकि दिगम्बर परम्परानुसार ४ कन्याओ के साथ।

श्वेताम्बर मान्यतानुसार प्रभव चोर अपने ५०० साथियो के साथ जम्बूकुमार के भवन मे चोरी हेतु पहुँचा। दिगम्बर मान्यतानुसार प्रभव नही था अपितु विद्युच्चर नामक चोर था।

श्वेताम्बरानुसार आर्य प्रभव विन्ध्य की तलहटी मे जयपुर राज्य के राजकुमार थे किन्तु दिगम्बर ग्रन्थकारो ने विद्युच्चर को हस्तिनापुर का राजकुमार बताया है।[1]

---

१ अथान्त मगधे देशे विद्यते नगर महत्।
हस्तिनापुरनाम्ना स्वर्लोकैकपुरोपमम् ॥२८॥
तत्रास्ति सवरोनाम्ना भूपोदोर्दण्डमण्डित ।
तस्य भार्यास्ति श्रीषेणा कामयष्टि प्रियबदा ॥२६॥

दिगम्वर परम्परा के विद्वान कविवर राजमल्ल ने विद्युच्चर के साथ दीक्षित हुए प्रभव आदि ५०० चोरो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे सभी राजकुमार थे और राक्षसादि द्वारा उपस्थित किये गये घोरातिघोर परीषहो को सहते हुए द्वादश अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन करते हुए विद्युच्चर सर्वार्थसिद्ध मे और प्रभव आदि ५०० मुनि सुरलोक मे देवरूप से उत्पन्न हुए ।[१]

श्वेताम्वर परम्परा मे आर्य प्रभव का बहुत ऊँचा स्थान है। प्रभव को जम्बूस्वामी का उत्तराधिकारी व श्रमण भगवान महावीर का तृतीय पट्टधर माना गया है जवकि दिगम्बर परम्परा मे जम्बूस्वामी का उत्तराधिकारी विद्युच्चर या प्रभव को न मानकर आर्य विष्णु को माना है।[२]

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे जम्बूकुमार द्वारा महाराज श्रेणिक की हस्तिशाला मे से बन्ध तोडकर भागे हुए मदोन्मत्त

तयोः सूनुरभून्नाम्ना विद्वान विद्युच्चर नृपः।
शिक्षिता सकला विद्या वर्द्धमानकुमारत. ॥३०॥
[जम्बू० च० सर्ग ५]

१ शताना पञ्च सख्याका प्रभवादि मुनीश्वरा।
अते सलेखना कृत्वा दिव जग्मुर्यथायथम् ॥१३९॥
[जम्बू० च० सर्ग १३ कवि राजमल्ल]

२ सिरिगोदमेणदिण्ण सुहम्मणाहस्स तेण जबुस्स।
विण्हू णदिमित्तो तत्तो य पराजिदो तत्तो ॥४३॥
[अंगपण्णत्ती]

हाथी को वश मे करने का और विद्याधर मृगाक की सहायतार्थ विद्याधरराज रत्नचूल से युद्ध करने और युद्ध मे उसे दो बार पराजित करने का उल्लेख किया गया है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा-मान्य किसी ग्रन्थ मे इन दोनो घटनाओ का उल्लेख नही मिलता।

श्वेताम्बर परम्परा के सभी ग्रन्थो मे जम्बूस्वामी का वीर निर्वाण स० ६४ मे निर्वाण होना मान्य है किन्तु दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती तथा पट्टावलियो में वीर निर्वाण सवत ६२ मे तथा अनेक दिगम्बर ग्रन्थो मे वीर नि० स० ६४ मे निर्वाण होना माना गया है।[1]

□

1 जैनधर्म का मौलिक इतिहास

सहायक ग्रन्थ-सूची

वसुदेव हिण्डी

जम्बूचरित्र

जैनधर्म का मौलिक इतिहास

जम्बू चरिउ

●●

लेखक की महत्वपूर्ण कृतियाँ

१. भगवान महावीर की सूक्तियाँ (सम्पादित) ३)
२. भगवान महावीर : जीवन और दर्शन २)
३. मेघकुमार : एक परिचय २)
४. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्यवेक्षण १०)
५. सत्य-शील की अमर साधिकाएँ १०)
६. संगीत-सौरभ (सम्पादित) २)
७. मुक्ति का अमर राही : जम्बूकुमार ५)
८. मंगल पाठ (सम्पादित) १५)
९ राजस्थानकेसरी श्री पुष्करमुनिजी महाराज :
जीवन और विचार ७)
१० श्री पुष्करमुनि जी महाराज : एक परिचय २)
११. श्रद्धा के स्वर
१२, श्रद्धा के सुमन
१३. श्रद्धा के संगीत
१४. भगवान महावीर जीवन : आणि दर्शन २)
१५. लार्ड महावीर : लाइफ एण्ड फिलोसफी ३)
१६. भगवान महावीर : जीवन अने दर्शन २)
१७. अहिंसा : एक विश्लेषण १०)
१८. जैनधर्म : एक परिचय १०)

मिलने का पता

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)